इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें....

ओमप्रकाश रावल

NTS : 15

स्व. श्री ओमप्रकाश रावल द्वारा जनांदोलनों-जनसंगठनों पर लिखे गए लेखों का संग्रह

इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें....

(श्री ओमप्रकाश रावल द्वारा जन संघर्षों-जनांदोलनों के बारे में
लिखे गए लेखों का संग्रह)

प्रकाशक-स्व. ओमप्रकाश रावल स्मृति निधि
मुद्रक - सुशोभन ग्राफिक्स, 31/3 गणेश कॉलोनी, इंदौर (म. प्र.)
प्रथम संस्करण - 3 फरवरी 1995
सहयोग राशि - 12. 00 रुपए

किताब निम्न व्यक्तियों/ पतों से प्राप्त की जा सकती है -

1. डॉ. राजीव लोचन
   मार्फत/'शहीद अस्पताल' छ.मु.मो.
   'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा'
   पो. - दल्ली-राजहरा
   जिला - दुर्ग - 491 228 (म.प्र.)

2. श्री महेन्द्र कुमार
   मार्फत/ 'सर्वोदय प्रेस सर्विस'
   29, संवाद नगर, नौलखा
   इन्दौर - 452 001

3. श्रीमती कृष्णा रावल
   496, सुदामानगर,
   इन्दौर - 452 009 (म.प्र.)

4. कविता सुरेश/कमल सिंह
   मार्फत/एकलव्य,
   ई-1/208 अरेरा कॉलोनी,
   भोपाल - 462 016 (म.प्र.)

5. योगेश दीवान/राजेश खिन्दरी,
   कसेरा मोहल्ला,
   होशंगाबाद - 461 002 (म.प्र.)

Movements: 15

मंथन अध्ययन केन्द्र बड़वानी

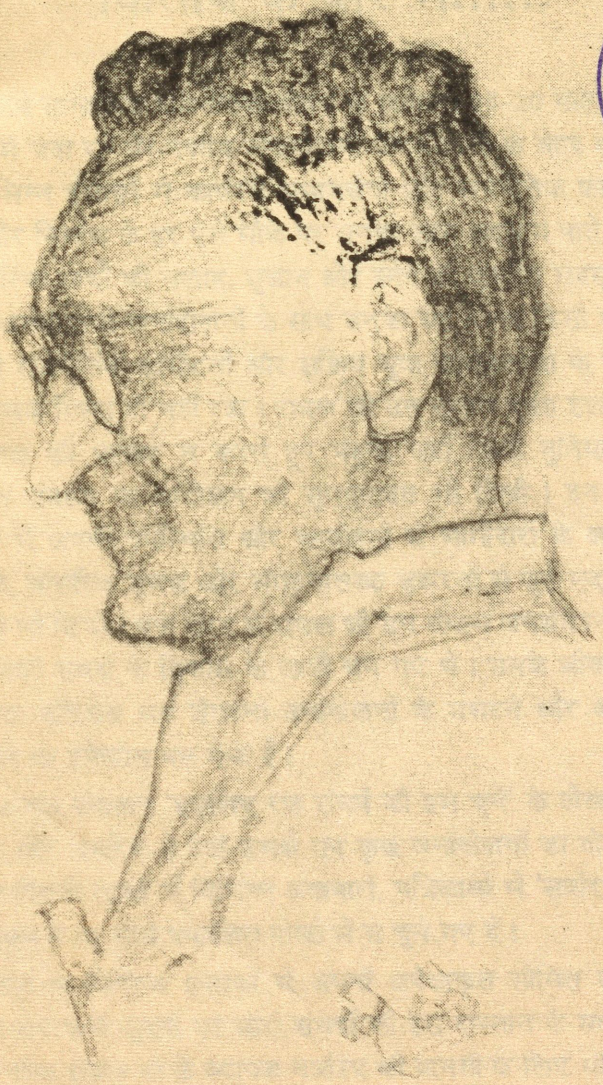

कलागुरु श्री विष्णु चिंचालकर की चित्रमय श्रद्धांजलि

किताब के बारे में.....

अपने लंबे सामाजिक-राजनैतिक जीवन के आखिरी 15-20 सालों में रावल जी देशभर में चल रहे गैर-दलीय जनांदोलनों-जनसंगठनों के बेहद करीब आ गए थे। विभिन्न इलाकों में कार्यरत समाजसेवी और राजनैतिक कार्यकर्ता अपने संघर्ष और निर्माण के हर ऐसे मौके पर उनका साथ-सहयोग पाते रहे जब उन्हें किसी वरिष्ठ साथी की सलाह, सुझाव और स्नेह की जरूरत महसूस होती थी। लेकिन जनसंगठनों-जनांदोलनों के साथ उनका यह रिश्ता किसी भी बुजुर्ग और अनुभवी राजनैतिक कार्यकर्ता और सक्रिय युवा कार्यकर्ताओं के बीच का मात्र भावनात्मक रिश्ता ही नहीं रहा। रावल जी उन तमाम दुरुह इलाकों में अपनी सेहत तक की परवाह न करते हुए पंहुचे, जहाँ किसी बुनियादी मुद्दे पर संघर्षरत संगठन या आंदोलन की सुगबुगाहट भी दिखी। इन इलाकों और संगठनों में अपनी उपस्थिति और कार्यक्रमों में भागीदारी के अलावा उन्होंने रणनीति, वैचारिक समझ और संगठनात्मक जरूरतों से जुड़े मुद्दों पर सार्थक हस्तक्षेप भी किया। एक तरह से रावल जी उन तमाम जनसंगठनों-जनांदोलनों और उनकी समझ के विकास के साक्षी बन गए थे। उनके जीवन के आखिरी बरसों का इतिहास जन संगठनों-जनांदोलनों के उभरने और अपनी हैसियत बना लेने का इतिहास बन गया है।

प्रस्तुत संकलन 'इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें' के लेख रावल जी के अनुभव और नजरिए से देखे-समझे गए कुछ जनांदोलनों का लेखा-जोखा है। ये लेख पिछले सालों में विभिन्न अखबारों, पत्रिकाओं में 'सर्वोदय प्रेस सर्विस' के माध्यम से या सीधे प्रकाशित लेखों में से चुने गए हैं।

देश के विभिन्न इलाकों में अपनी अपेक्षाकृत सीमित ताकत लेकिन व्यापक महत्व के मुद्दों पर जारी संघर्षों की इस दास्तान के साथ ही संकलन में कुछ लेख रावल जी के व्यापक नजरिए की बानगी के लिए भी लिए गए हैं। उनका एक सपना और आग्रह था कि देश भर के संगठनों को मिल-जुलकर एक सामूहिक 'मोर्चा' बनाना चाहिए। कथित मुख्यधारा की राजनैतिक पार्टियों के सत्ताप्रेम से निराश हुए रावल जी को जनांदोलनों और जनसंगठनों के एक बड़े गठबंधन की जरूरत महसूस होती थी। प्रस्तुत संकलन में 'हरित मंच' बनाने के लिहाज से हेमलकसा सम्मेलन और बड़े बाँधों के खिलाफ हुए

आनंदवन सम्मेलन पर लिखे गए लेख रावल जी की इसी आकांक्षा की अभिव्यक्ति करते हैं। हरसूद (खंडवा) में हुए 'संकल्प मेले' ने भी उन्हें इस एकजुटता की आशा बंधाई थी। कई तरह की अड़चनों और असहमतियों के चलते अब तक ऐसा कोई ठोस गठबंधन नहीं उभर पाया है लेकिन जनांदोलनों-जनसंगठनों के बीच ये घटनाऐं इस दिशा में सोचने और पहल करने का एक मील पत्थर साबित हुई हैं।

'नर्मदा बचाओ आंदोलन', 'भोपाल गैस कांड', 'एकता परिषद', 'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा', 'खेड़ूत मजदूर चेतना संगठ', 'गंगा मुक्ति आंदोलन', 'टिम्बकटू कलेक्टिव' 'किसान आदिवासी संगठन', 'आदिवासी मुक्ति संगठन', 'टिहरी बाँध विरोधी आंदोलन', सिंहभूम में बाँध विरोध, स्वर्णरिखा बहुउद्देश्यीय परियोजना के विरोध का आंदोलन आदि मुद्दों-आंदोलनों के साथ रावल जी का निकट का संबंध रहा है। इन पर लिखे गए उनके लेखों से वैकल्पिक राजनीति के सार्थक मुद्दों और संघर्षों के अलावा रावल जी के दृष्टिकोण को समझने में भी मदद मिलती है।

भील भिलाला आदिवासियों के बीच एक जमाने में बुनियादी सवालों को लेकर 'लाल टोपी आंदोलन' चलाने वाले मामा बालेश्वर दयाल एक अर्थ में रावल जी के राजनैतिक गुरु भी हैं और ऐसा वे मानते भी थे। इसी तरह 'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा' के प्रसिद्ध मजदूर नेता कॉ. शंकर गुहा नियोगी रावल जी के सम्मान के पात्र रहे थे। युवा कार्यकर्ताओं में केसला (होशंगाबाद) के आदिवासी क्षेत्र में "किसान आदिवासी संगठन" के काम में लगे स्व. राजनारायण रावल जी के सोच और समझ के करीब रहे थे। मामा जी कॉ. नियोगी और साथी राजनारायण पर लिखे गए रावल जी के लेख अपने-अपने क्षेत्रों और दौर में समाज के बदलाव में लगे इन तीनों विशिष्ट साथियों के प्रति उनके अहसास को उजागर करते हैं।

मानवाधिकार का मुद्दा रावल जी के सरोकारों में सबसे अहम मुद्दा रहा था। वे अपनी मृत्यु के समय म. प्र. लोक स्वतंत्रता संगठन (पी.यू.सी.एल.) के अध्यक्ष थे। इस विषय पर लिखा उनका एक आलेख मानवाधिकारों, नागरिक अधिकारों के बारे में उनके दृष्टिकोण का आभास देता है।

संकलन का आखिरी लेख रावल जी का भी आखिरी लेख था। विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के हथकंडों के खिलाफ बड़वानी (खरगोन) में

आयोजित संगोष्ठी तथा सेंधवा (खरगोन) में 'आदिवासी मुक्ति संगठन' द्वारा आयोजित आदिवासी सम्मेलन के बारे में लिखा गया यह लेख रावल जी की मृत्यु के दिन ही अखबारों में प्रकाशित हुआ था।

'इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें'- संकलन के लेखों से देश भर में फैले उन संगठनों-आंदोलनों की सक्रिय उपस्थिति का अंदाजा लगता है जो सत्ता की राजनीति के बजाए बुनियादी मुद्दों पर एक सार्थक राजनैतिक पहल कर रहे हैं।

'संकलन' के लेखों को चुनने एवं प्रूफ पढ़ने में डॉ. राजीव लोचन, श्रीमति कृष्णा रावल तथा अन्य साथियों ने मदद की है।

जनांदोलनों तथा संगठनों के मुद्दों और संघर्षों के प्रसार-प्रचार से लगातार जुड़ी "सर्वोदय प्रेस सर्विस" तथा उसके संपादक श्री महेन्द्र कुमार ने सामग्री जुटाने में मदद की है। "नई दुनिया" पुस्तकालय तथा वहाँ कार्यरत कमलेश जी ने भी इस काम में हमारी सहायता की है।

संकलन की कम्पोजिंग रावल जी के युवा साथी श्री सुभाष रानडे एवं उनकी सहयोगी श्रीमती शोभना हार्डिया ने व्यावसायिक हितों को दरकिनार करके अपने वरिष्ठ साथी के प्रति श्रद्धांजलि के बतौर की। सुभाष जी एवं शोभना जी ने पुस्तक की छपाई में भी सहायता दी है।

हम सबके आदरणीय कलागुरु श्री विष्णु चिंचालकर ने रावल जी के स्केच के माध्यम से अपने मित्र को श्रद्धाँजलि दी है।

पुस्तक को इस रूप में हमारे हाथों तक पहुंचाने में दिलीप चिंचालकर, राजेश खिन्दरी, डॉ. भाग्यवंती वर्मा और अनेकों साथियों ने सहायता की है।

रावल जी और उनके द्वारा उठाए गए जनांदोलनों-जनसंगठनों के संघर्ष के मुद्दों के प्रति सम्मान तथा समर्थन के नाते किए गए सहयोग के लिए हम सभी पाठक इन मित्रों के आभारी हैं। संकलन जनांदोलनों, संगठनों और दलीय राजनीति में लगे साथियों को वैकल्पिक राजनीति और उसके मुद्दों की समझ बढ़ाने में सहायक होगी ऐसी अपेक्षा के साथ -

■ राकेश दीवान

क्यों जरूरी है - हरित मंच

"अनुदानों से लाभान्वित लोग चाहे वे कागज के कारखानेदार हों, जिन्हें बाजार भाव से एक हजार गुना कम भाव पर बांस मिल रहा हो या शहर में रहनेवाले लोग हो, जिन्हें पानी उसकी वास्तविक लागत से 50 गुना कम भाव पर मिल रहा हो या कि बड़े किसान हो जिन्हें बिजली उसकी पैदावार की कीमत से 20 गुना कम पर मिल रही हो", ये सब लोग मूल्यवान प्राकृतिक संसाधनों को अपनी अकुशलता और फिजूलखर्ची के कारण समाप्त करते चले जा रहे हैं।

प्राकृतिक संसाधनों की इन फिजूलखर्चियों को चूंकि तत्काल भुगतान नहीं पड़ता, इसलिए उनमें मितव्ययिता की कोई इच्छा नहीं होती। लाभ प्राप्त करने के लिए भ्रष्टाचार बढ़ता जाता है और इन लाभान्वित विशिष्ट लोगों, नौकरशाहों और राजनीतिज्ञों का एक गठजोड़ बन जाता है जो अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा शोषण करते रहते हैं।

उपरोक्त उस घोषणा-पत्र के अंश हैं, जो जुलाई '89 के दूसरे सप्ताह में नागपुर की एक बैठक में बनाया गया है। देश में एक हरित मंच (ग्रीन फ्रंट) बने इसकी चर्चा उन लोगों में चल रही है जो बिगड़ते पर्यावरण और विस्थापना से उत्पन्न समस्याओं और विकास की वर्तमान पद्धतियों के दुष्परिणामों से चिंतित हैं। मार्च के महीने में महाराष्ट्र के गढ़चिरौली के सुदूर अंचल में इन्द्रावती के किनारे बसे हेमलकसा में एक बैठक हुई थी। बैठक में मुख्य रूप से वे क्रियाशील (एक्टिविस्ट) लोग थे जो बड़े बांधों से उत्पन्न समस्याओं से जूझ रहे हैं। बैठक में बाबा आमटे एवं 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' की नेता सुश्री मेधा पाटकर के अलावा "बंजर भूमि विकास बोर्ड" की पूर्व अध्यक्ष श्रीमती कमला चौधरी, "प्रिया" के श्री राजेश टंडन, "लोकायन" के श्री स्मितु कोठारी, "समाज परिवर्तन समुदाय", धारवाड़ के श्री एस. आर. हीरेमठ आदि समाज-वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। इस बैठक के निर्णयानुसार एक छोटी कमेटी ने उपरोक्त घोषणा-पत्र का मसविदा तैयार किया है। इसे तैयार करने में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेस, बेंगलौर के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. माधव गाडगिल का प्रमुख हाथ है। अभी यह मसविदा अन्तिम नहीं है। देश के करीब 60 ऐसे वैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों को जो बिगड़ते हुए पर्यावरण से चिंतित हैं या इसकी रोकथाम की मैदानी लड़ाई में लगे हैं, इसे विचारार्थ भेजा गया है। आशा की जाती है कि एक माह में उपरोक्त अपनी प्रतिक्रियाएं भेज सकेंगे तथा अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में पुनः महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले के आनन्दवन में एक बड़ी बैठक होगी। घोषणा-पत्र में जो आधारभूत सिद्धांत तय होंगे उनके आधार पर क्या देश में एक "हरित मंच" बन सकता है, तथा यदि हाँ, तो फिर उसका स्वरूप कैसा हो,

इस पर विचार करने के लिए ऐसे स्वयंसेवी संगठनों, मैदानी समूहों और व्यक्तियों का शीघ्र ही एक सम्मेलन भी होगा।

उपरोक्त मसविदा कहता है कि इस समय देश के समक्ष जो समस्याएं हैं उनमें तीन प्रमुख हैं। पहली है, प्राकृतिक संसाधन, जैसे जंगल और पानी का भारी दुरुपयोग, जैविक विभिन्नताओं का नाश और ओझोन छतरी तक का प्रदूषण। दूसरी है, बढ़ती हुई सामाजिक एवं आर्थिक विषमता तथा तीसरी बड़े पैमाने पर विशेषतः ग्रामीण इलाकों में पूर्ण तथा अर्द्ध-बेरोजगारी जिसका नतीजा यह है कि गांवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ता ही जा रहा है। मसविदा आगे कहता है कि ये समस्याएं इस प्रक्रिया से जुड़ी हैं, जो शहरों, उद्योगों और सघन खेती (इन्टेन्सिव कल्टिवेशन) को बहुत ही सस्ती कीमत पर प्राकृतिक संसाधन मुहैया करती है, जिसकी भारी कीमत गांवों और जंगलों को चुकानी पड़ती है। विडंबना यह है कि यह होता है राज्य की शक्तिशाली मशीनरी के बल पर।

बड़े बांध, आणविक संस्थान, यूकेलिप्टस लगाये जाने, पानी के प्रदूषण, जंगल की कटाई आदि के खिलाफ देशभर में अलग-अलग अनेकों समूह या तो आन्दोलन में लगे हैं या चेतना पैदा करने का काम कर रहे हैं। कई वैज्ञानिक, समाजशास्त्री और लेखक भी इससे जुड़े हैं। सरकार एवं सत्ता की ओर से यह कहा जाता है कि ये विकास-विरोधी हैं, विदेशी ऐजेन्ट हैं, तथा नुमाइश के लिए आदिवासियों को उसी हालत में बनाए रखना चाहते हैं।

इसलिए यह जरूरी है कि इन आन्दोलनों से जुड़े लोगों की वैचारिक पृष्ठभूमि बहुत स्पष्ट रूप से लोगों के सामने प्रस्तुत हो। यह भी जरूरी है कि अलग-अलग काम कर रहे ये समूह इस तरह आपस में जुड़ें कि अपनी सम्मिलित शक्ति के बल पर ये राज्य की नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावित कर सकें।

विकास की आधुनिक पद्धतियों के बुरे नतीजे अब सामने आ गए हैं। अब तीसरी दुनिया ही नहीं बाकी विकसित दोनों दुनिया के लोग भी समझते जा रहे हैं कि दुनिया अब ज्वालामुखी पर खड़ी है तथा मनुष्य का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। इस संकट का मुख्य कारण विकास की केन्द्रित व्यवस्था एवं प्राकृतिक संसाधनों को मनुष्य के भोग-विलास का साधन मात्र समझना है। मनुष्य और प्रकृति का जो प्रेमल रिश्ता है उसे भुला दिया गया है।

मसविदा कहता है कि अब हमें यह समझ लेना चाहिए कि "दुनिया के समस्त जीव हमारे साथी हैं, तथा उन्हें भी इस दुनिया में रहने का अधिकार है। वर्तमान पीढ़ी भविष्य की ट्रस्टी है जिसका यह उत्तरदायित्व है कि प्राकृतिक संसाधनों को आनेवाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखे। प्राकृतिक संसाधन संभ्रांत वर्ग की विलासिता के लिए वस्तुओं का ढेर नहीं है इनकी तो इज्जत करनी है ताकि भविष्य में भी मनुष्य और जैविक दुनिया जिन्दा रह सके।"

तेजी से नष्ट होते जा रहे प्राकृतिक संसाधनों की प्रक्रिया में आर्थिक एवं सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही है तथा इसके प्रति चिंता गहरा जाना स्वाभाविक है। प्राकृतिक साधनों को बचाने की लड़ाई के साथ विकास की पद्धति के सवाल जुड़े हुए हैं तथा यह भ्रम अब तेजी से टूट रहा है कि वर्तमान औद्योगीकरण की केन्द्रीय अर्थव्यवस्था तरक्की की कुंजी है। बड़े बांधों से होनेवाला विनाश वर्तमान बीमार अर्थव्यवस्था का एक लक्षण है। हमें ऐसी वैकल्पिक विकास की पद्धति को लेकर चलना होगा जिस पर लोगों का नियंत्रण हो तभी विषमता दूर होगी और प्राकृतिक संसाधन भी बचेंगे। इसलिए जो व्यक्ति अथवा समूह पर्यावरण-नाश अथवा विस्थापना की समस्याओं से जूझ रहे है वे वास्तव में सामाजिक न्याय पर आधारित एक व्यापक विचारधारा के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हरित घोषणा-पत्र पर्यावरण और विकास की बहस के मुद्दों को उभारता है तथा उस दिशा को स्पष्ट करता है जो सामाजिक न्याय पर आधारित निरन्तर विकास और पर्यावरण को आगे बढ़ा सके। इस आधार पर बनने वाला 'हरित मंच' यदि ताकतवर बन सका तो देश के राजनैतिक दल एवं सरकार उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेंगे।

(सप्रेस द्वारा पेनोस, पर्यावरण कक्ष एवं गांधी शांति केन्द्र के सहयोग से)

साभार - शताब्दी सन्देश, 1-8-1989

बड़े बांधों के विरुद्ध संघर्ष की दुंदुभी

मध्यप्रदेश की नर्मदा नदी पर बन रहे नर्मदा सागर, बिहार के कोयलकारो, उत्तराखंड के टिहरी, आंध्र के पोलावरम एवं केरल के पोयमकुट्टी बांधों के खिलाफ संघर्ष तेज किया जाएगा। यह निर्णय पिछले दिनों (जुलाई प्रथम सप्ताह) आनंदवन में हुई एक संगोष्ठी में लिया गया जिसमें देश के विभिन्न प्रान्तों से आए 80 पर्यावरणशास्त्री, मैदानी कार्यकर्ता एवं पत्रकार शरीक हुए थे। आनन्दवन जो कि बाबा आमटे की कर्मस्थली है, में हुई इस संगोष्ठी के प्रारम्भिक भाषण में बाबा आमटे ने कहा कि कुष्ठ रोगियों की सेवा करते हुए मैं 40 वर्षों तक एक सीमित क्षेत्र में बन्द रहा तथा बाहर जाकर सेमीनार तक में शरीक नहीं हुआ। बाबा ने आगे कहा कि मेरे पिछले अनुभव इस बात के द्योतक हैं कि इस समय सारा देश ही मानसिक रूप से कोढ़ग्रस्त है तथा यह मानसिक कोढ़ शारीरिक कोढ़ से अधिक भयावह और जानलेवा है। बाबा पिछले दिनों जख्मी पंजाब के गांव-गांव में घूमे हैं, इसके पूर्व वे 'भारत जोड़ो अभियान' पर दक्षिण से उत्तर की यात्रा पर निकले थे और अब वे पूर्व से पश्चिम की यात्रा पर निकलने वाले हैं। आज और इसी क्षण बड़े बांधों के खिलाफ प्रबल संघर्ष खड़ा होना चाहिए। यह प्रतिपादित करते हुए बाबा आमटे ने कहा कि 'प्राकृतिक संसाधन केवल पूर्वजों की धरोहर ही नहीं है वे भावी पीढ़ी का हम पर कर्ज हैं, जिसे ब्याज समेत हमें सुरक्षित रखना है।'

उपरोक्त संगोष्ठी ने एक प्रस्ताव के द्वारा बड़े बांधों के विरोध करने का सामूहिक संकल्प जाहिर किया तथा कहा कि ये बड़े बांध विकास नहीं, विनाश है, आदर्श नहीं, तबाही लाने वाले हैं। प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि बड़े बांधों के विरोध में हो रही व्यापक आलोचनाओं को सरकार ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया है, आदिवासियों की मांगों को कुचल दिया है और सरकारी जांच समितियों की रपटें आने के पूर्व ही बड़े बांधों को स्वीकृति प्रदान कर दी है- इनमें सरदार सरोवर, नर्मदा सागर और टिहरी बांध विशेष हैं। यह भी कहा गया है कि इन बांधों के निर्माण के फलस्वरूप दुर्लभ वनस्पतियां और जीव लुप्त हो जाएंगे। इस बात पर आश्चर्य प्रगट किया गया है कि स्वीकृति के पूर्व ही सरकारी समितियां जंगल नष्ट करने लगती है जो कि फारेस्ट कन्जरवेशन एक्ट का सरासर उल्लघंन है।

प्रस्ताव कहता है कि इन बड़े बांधों ने जल-चक्र को गड़बड़ा दिया है, जिसके फलस्वरूप 'निमाड़ क्षेत्र' में रह रहे हजारों किसान एवं मछुआरे बर्बाद हो गए हैं तथा लाखों एकड़ जमीन दलदल एवं खारीकरण के कारण बंजर हो गई है। इसके अलावा इन बांधों से भूकम्प के खतरे तो बढ़े ही हैं, लेकिन कुछ बांधों की भौगोलिक

(स्ट्रेटजिक) अवस्था के कारण देश की सुरक्षा को भारी खतरा पैदा हो गया है।

संगोष्ठी ने एक मत से यह जाहिर किया है कि उन सभी परियोजनाओं को, जिन पर अभी काम शुरू नहीं हुआ है रद्द कर दिया जाए तथा जिन परियोजनाओं पर काम शुरू हो गया है उनकी लाभ-हानि का अनुपात तथा सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण एक स्वतंत्र संगठन द्वारा करवाया जाए, जिसमें लोगों के प्रतिनिधि रहें। इसके अलावा जो लोग विस्थापित हो चुके हैं, उन्हें पूरी सुविधाएं देकर बसाया जाए।

संगोष्ठी ने अपना प्रस्ताव सरकार या ऐसी किसी अन्य संस्था को नहीं, बल्कि राष्ट्र को ही समर्पित किया है। देश के प्रमुख लोगों ने तीन दिन तक चर्चा करने के बाद एक सामूहिक संकल्प लिया था जिसके कुछ मुद्दे ऊपर उल्लेखित हैं। इस संकल्प के अलावा संगोष्ठी ने बड़े बांधों के खिलाफ प्रबल अभियान चलाने के लिए एक कार्यक्रम भी बनाया। आरंभ में उल्लिखित बांधों के विरुद्ध विशेषतः अभियान चलाया जाएगा। प्रचार-प्रसार के लिए मेलों का विशेष उपयोग किया जाएगा। उपरोक्त कल्प पत्र की प्रतियां विधायकों एवं संसद सदस्यों को भी भेजी जाएंगी। छोटी-छोटी पुस्तिकाएं प्रकाशित की जाएंगी, सभा, जुलूस और धरने आयोजित किए जाएंगे तथा अन्त में बड़ी संख्या में लोगों को अप्रैल के तीसरे सप्ताह में हेमलकसा में एकत्रित किया जाएगा। हेमलकसा भी बाबा आमटे की कर्मस्थली है जहां उनके द्वितीय पुत्र श्री प्रकाश अपनी पत्नी के साथ काम कर रहे हैं। बाबा आमटे ने भी घोषणा की कि वे अपनी आगामी 'भारत जोड़ो यात्रा' के दौरान बांधों के दुष्परिणामों के संबंध में लोगों को जागृत करेंगे।

संगोष्ठी में भाग लेते हुए श्री सुन्दरलाल बहुगुणा ने कहा कि जंगल लकड़ी की खदान नहीं, पानी और मिट्टी की खदान है तथा विकास का अर्थ बाहुल्यता नहीं बल्कि सुखशांति है। पर्यावरण शास्त्री श्री अनिल अग्रवाल ने विभिन्न भौगोलिक भू-भागों की विभिन्न परिस्थितिकीय स्थितियों का जिक्र करते हुए कहा कि विकास की वर्तमान पद्धतियां इन विभिन्नताओं को नष्ट कर नई समस्याएं खड़ी कर रही है। वैज्ञानिक श्री अनिल सद्गोपाल ने 'जानने के अधिकार' और काम पर विशिष्ट वर्गों के नियंत्रण की चर्चा की। गांधीवादी कमला चौधरी ने बांध के सवाल को राष्ट्रीय सवाल के साथ जोड़ने का सुझाव दिया जैसाकि आजादी की लड़ाई के समय चम्पारन में हुआ था।

बड़े बांधों के खिलाफ चल रहे संघर्षों में कार्यरत मेधा पाटकर एवं रमेश बिल्लौरे ने क्रमशः सरदार सरोवर एवं नर्मदा सागर के विरोध में चल रही गतिविधियों का वर्णन किया। 'जनचेतना समाज' बिहार के श्री मेघनाथ, 'पश्चिमी घाट आंदोलन' के श्री मोहनकुमार एवं 'वृक्षमित्र' के श्री मोहन हीरालाल ने क्रमशः कोयलकारो, पोयमकुट्टी एवं इंचमपल्ली भोपालपट्टनम के खिलाफ चल रहे आंदोलन का जिक्र किया। थाणे की सिराज बलसारा एवं अहमदाबाद की बेला भाटिया ने अपने अनुभवों के आधार पर विस्थापितों की दर्दनाक हालत का जिक्र किया। नवनिर्माण समिति गुजरात के श्री रमेश

देसाई ने भी उकाई बांधों के विरुद्ध हुए संघर्ष का विवरण सुनाया।

उपरोक्त के अलावा जिन लोगों ने संगोष्ठी में भाग लिया उनमें इंडियन सोशल इन्स्टीट्यूट, दिल्ली के श्री वाल्टर फर्नान्डिस, 'इन्डियन नेशनल ट्रस्ट फॉर आर्ट एंड कल्चरल हेरिटेज' के श्री एन. डी. जुयाल, लोकायन के श्री स्मितु कोठारी, वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के श्री थॉमस मेथ्यु, विज्ञान शिक्षा केन्द्र के श्री भारतेन्दु प्रकाश, आदिमजाति, एवं जनजाति के कमिश्नर श्री ब्रह्मदेव शर्मा, 'एसोसिएशन ऑफ इन्वायरमेंटल जर्नलिज्म' के श्री डेरिल डिमोन्टे, सेन्चुरी पत्रिका के श्री बिट्टू सहगल और नई दुनिया, इंदौर के श्री राहुल बारपुते प्रमुख हैं।

राजनैतिक दलों को तो इतनी फुर्सत ही नहीं है कि वे इस बुनियादी बात पर चिन्तन करें कि किस तरह बड़े बांध विकास के बजाय विनाश के प्रतीक बन रहे हैं। शहर के रहने वाले अधिकांश लोग या तो इन तथ्यों से अनभिज्ञ हैं या संवेदनहीन हो गए हैं। अधिकांश विशेषज्ञ अर्थशास्त्री या इंजीनियर सरकारी भाषा बोलते हैं, ब्यूरोक्रेट बेहरे हो गए हैं, लेकिन आशा की किरण यह है कि कुछ फक्कड़ किस्म के युवक और युवतियां बुनियादी संघर्षों में लगे हुए हैं तथा उनके साथ कुछ अर्थशास्त्री, विशेषज्ञ वैज्ञानिक एवं पर्यावरण शास्त्री भी जुड़ते चले जा रहे हैं। यह भी उत्साहवर्धक है कि कुछ युवा पत्रकार इन मानवीय त्रासदियों में गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं।

साभार - (सप्रेस)

हरसूद का संकल्प मेला; अस्वीकृति में उठे हजारों हाथ

भोपाल की तरह हरसूद को भी अंतरराष्ट्रीय ख्याति मिली है। भोपाल तो सोया हुआ था वहाँ दुर्घटना हुई थी लेकिन हरसूद होने वाली त्रासदियों के पहले जाग चुका है। मानव निर्मित दुर्घटनाओं में भोपाल बेमिसाल था लेकिन अब नर्मदा घाटी में मानव-संहार का एक बीस-पच्चीस वर्षीय सिलसिला मंडरा रहा है, यह संहार भी भोपाल की तरह प्राकृतिक दुर्घटना नहीं होगा। ट्रकों, बसों, रेल गाड़ियों, ट्रेक्टरों और बैलगाड़ियों से उठी हरसूद की धूल उन लोगों से, जो हर कीमत पर सरदार सरोवर और नर्मदा सागर बनाए जाने पर तुले हुए हैं, यह सवाल छेड़ गई है कि क्या अब भी हरसूद डूबेगा ? विशाल जनसमूह के द्वारा चेतावनी दिए जाने के बाद भी क्या नर्मदा घाटी में होने वाला नरसंहार और पर्यावरण विनाश नहीं रूकेगा ?

अनगिनत हजारों लोगों का जनसागर मध्यप्रदेश के खंडवा जिले के एक छोटे से कस्बे हरसूद में पिछले सितंबर की 28 तारीख को उमड़ पड़ा था। देशभर के 150 क्रियाशील समूह, जो अपने-अपने क्षेत्र में पर्यावरण विनाश, विस्थापन और सामाजिक अन्याय के भिन्न-भिन्न पहलुओं को लेकर जूझ रहे हैं, इस 'संकल्प मेले' में उपस्थित थे। इन क्रियाशील समूहों ने विशाल जन समुदाय के साथ यह संकल्प लिया कि हम विनाशकारी विकास की योजनाएँ नहीं चलने देंगे।

भोपाल ने यह सबक सिखाया था कि कीटनाशक दवाई के निर्माण को हमारी विकास की नीतियों से अलग करके नहीं देखा जा सकता तथा इस कारण यूनियन कार्बाइड के खिलाफ लड़ाई वास्तव में विकास की पद्धतियों के खिलाफ लड़ाई है। यह भी सिखाया था कि देश में बदलाव लाने के इच्छुक समर्पित लोग आपस में मिल-जुलकर काम करें। हरसूद ने एक कदम और आगे बढ़ाकर यह संकेत दिया है कि इस देश में एक ऐसी राजनीतिक शक्ति जन्म लेने के लिए मचल रही है जो निहित स्वार्थ में डूबी हुई समस्त राजनीतिक शक्तियों को चुनौती देते हुए आगे बढ़ना चाहती है। नई वैकल्पिक राजनीतिक शक्ति के उदय की भविष्यवाणी करना चाहे कठिन हो लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि हरसूद के गर्भ से एक ऐसी "हरित शक्ति" जन्म ले रही है जो सामाजिक न्याय पर आधारित ऐसी विकास पद्धतियों के लिए निरंतर संघर्ष करेगी जो पर्यावरण की समुचित रक्षा कर सके।

हरसूद के संकल्प मेले के समाचार संकलन की दृष्टि से भारतीय समाचार एजेंसियों, राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पत्र-पत्रिकाओं के करीब 125 प्रतिनिधियों के अलावा

बी. बी. सी., एसोसिएटेड (एपी), वाइस ऑफ अमेरिका एवं कुछ अन्य योरप के पत्रों के प्रतिनिधि भी थे। हरसूद अंतरराष्ट्रीय दिलचस्पी का कारण क्यों बना है इसे समझने की जरूरत है। प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी, म. प्र. के मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा, गुजरात के मुख्यमंत्री श्री अमरसिंह चौधरी एवं नर्मदा घाटी विकास निगम गुजरात के अध्यक्ष श्री सनत मेहता जिस विकास की बात कर रहे हैं उसका तो विश्व भर में भांडा-फोड़ हो रहा है। वर्तमान विकास की पद्धतियों ने अमेरिका और योरप को तो जहरीली गैसों से घेर लिया है अब वे अपनी जान बचाने के लिए तीसरी दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों की लूट में लगे हैं। लेकिन तीसरी दुनिया में जो अपने जीवन को बचाने की जागृति पैदा हो रही है उसके कारण मानव जाति के समक्ष यह प्रश्न मजबूत हो गया है कि जिसे पश्चिम विकास कहता था व जिसे तीसरी दुनिया के हुक्मरानों ने तोते की तरह रटना शुरू किया था, वह विकास था या विनाश ? अब तो दुनिया नई करवट ले रही है। ब्राजील ने तय किया है कि अमेजान के जंगलों की कीमत पर बाँध नहीं बनेगा और थाईलैंड ने घोषणा की कि अब एक इंच भी जंगल नहीं काटा जाएगा लेकिन भारत जो गाँधी का देश है जिसे दुनिया को नई राह दिखाना था, उसके कर्णधार उसे अंधी दौड़ दौड़ाने पर आमादा हैं। लेकिन यदि नर्मदा घाटी में फैल रहा आंदोलन सफल होता है तो इसका प्रभाव न केवल भारत की हरित लड़ाई पर पड़ेगा बल्कि पूरा विश्व भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। अंतरराष्ट्रीय दिलचस्पी का यही कारण है।

बाहुल्य, फिजूलखर्ची और ऐशो-आराम पर आधारित पूँजीवादी केंद्रीकृत विकास की पद्धति तो चरमरा ही रही है, साम्यवादी व्यवस्था भी चरमरा रही है। पैदावार की मिल्कियत को बदलकर इस व्यवस्था ने विश्व के एक हिस्से को नई ऊर्जा दी थी लेकिन विकास के पूँजीवादी आधारों को न बदलने के कारण अब यह व्यवस्था भी संकटग्रस्त है। "पैरेस्त्रोइका" पेबंद अधिक दिन तक नहीं चलेगा। न्यूनतम आवश्यकताओं पर आधारित सतत चलने वाली विकास की पद्धति जो विकेंद्रित व्यवस्था एवं पर्यावरण के संरक्षण पर ही संभव है, यदि नहीं अपनाई गई तो मनुष्य जाति जिंदा नहीं रह सकेगी। शीघ्र ही नई पीढ़ी तथाकथित विकास के लंबरदारों से सवाल करेगी कि तुम्हें ऐशो-आराम के लिए भावी पीढ़ी की संपत्ति को लूट लेने और नष्ट-भ्रष्ट कर डालने का क्या हक है ? हुक्मरान नीरो की तरह तथाकथित विकास का राग अलाप रहे हैं और उन्हें भित्ती पर लिखे अक्षर "कोई नहीं उठेगा, बाँध नहीं बनेगा" न दिखाई दे रहे हैं और न सुनाई दे रहे हैं। जो हरसूद गए थे उन्हें ज्ञात है कि "ले मशालें चल पड़े हैं लोग मेरे गाँव के" या "नर्मदा घाटी में अब लड़ाई जारी है" आदि गीत गाती हुई टोलियाँ जब प्रवेश कर रही थी तो बरबस देश की आजादी की लड़ाई की यादें ताजी हो उठी थी। लोग कह रहे थे नई क्रांति देश में जगी है।

कुछ अखबारों में उपरोक्त संकल्प मेले के बाद टिप्पणियाँ लिखी गई। उन

टिप्पणियों को देखकर लगता है कि आंदोलन की भूमिका तथा लगातार दिए जा रहे आँकड़ों और तर्कों से या तो वे एकदम अनभिज्ञ है या फिर किन्ही कारणों से सच नहीं कह रहे हैं। टिप्पणियों का आशय यह है कि गुजरात तो सिंचाई और बिजली फैलाकर खूब विकसित हो जाएगा। इसके अलावा मानव के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा गया है कि पुनर्वसन में यदि त्रुटियाँ हैं तो उन्हें दूर किया जा सकता है।

जहाँ तक गुजरात के विकास का सवाल है आँकड़ों सहित इसे बार-बार दोहराया गया है कि सरदार सरोवर से केवल मध्य गुजरात को ही पानी मिलेगा, जहाँ पूर्व से ही सिंचाई एवं पीने के पानी की व्यवस्थाएँ हैं। उत्तरी गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ तो फिर भी प्यासे रह जायेंगे। 'इंडियन नेशनल ट्रस्ट फॉर आर्ट एण्ड कल्चरल हेरिटेज' (इंटेक) की एक रपट में बतलाया गया है कि सौराष्ट्र की 69 तहसीलों में से 56 तहसीलों को एक बूंद भी पानी नहीं मिलेगा। इसके अलावा सौराष्ट्र की मुश्किल से 10 प्रतिशत तहसीलों को ही पर्याप्त पानी मिलेगा। सरदार सरोवर से जिन 62 तहसीलों को पानी मिलने वाला है उनमें से दो तिहाई सूखाग्रस्त नहीं है जो 52 सूखाग्रस्त तहसीलें गुजरात में हैं उनमें से दो तिहाई को नहीं के बराबर पानी मिलेगा। फिर भी श्री सनत मेहता कहते हैं कि सरदार सरोवर से गुजरात की पानी की समस्या हमेशा-हमेशा के लिए सुलझ जायगी।

सत्ताधारी दल ही नहीं, विरोधी दलों के नेता भी अवसरवादी नीतियाँ अपनाते हैं। श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने बड़े बाँधों के विरोध में अपना मत जाहिर किया लेकिन जब गुजरात में उनका विरोध हुआ तो कहने लगे कि सरदार सरोवर पर चूँकि बड़ी रकम खर्च हो गई है, इसलिए बन जाना चाहिए। श्री राजीव गाँधी ने गुजरात में कहा कि विश्वनाथ प्रतापसिंह गुजरात के विकास में रोड़ा अटका रहे हैं। कन्नड़ भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार तथा ज्ञानपीठ पुरस्कृत श्री शिवराम कारंत हरित आंदोलन में अग्रणी रहते हैं, वे हरसूद भी आए थे। उन्होंने उस विशाल सभा में नार्वे की प्रधानमंत्री श्रीमती ब्रुटलैंड की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग की रपट का जिक्र किया। यह बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो यह बतलाता है कि वर्तमान विकास की पद्धतियों ने मनुष्य को कैसी विकट परिस्थितियों में जकड़ दिया है।

आयोग ने सिफारिश की है कि वर्तमान विकास की पद्धतियों के स्थान पर निरंतर चल सकने वाली वैकल्पिक विडंबना यह है कि उपरोक्त रपट पर प्रस्तावना लिखते हुए श्री राजीव गाँधी कहते हैं कि "अधिक अन्न और आराम की वस्तुएँ पैदा करने के लिए हमने हमारे जंगल नष्ट कर दिए हैं। औद्योगिक विकास के नाम पर हमने हमारी नदियों और समुद्रों को प्रदूषित कर दिया है। विश्व का तापमान बढ़ा दिया है तथा ओजोन की छतरी को पतला कर दिया है जो सूर्य की विकिरणों से हमारी रक्षा करती है।" श्री गाँधी आगे कहते हैं- "हम भारतीय इसे अच्छी तरह समझते हैं, हम अपनी बढ़ती हुई

आबादी की न्यूनतम आवश्यकताओं की हमेशा के लिए पूर्ति कर सकते हैं जब हमारी पारिस्थितिकी (इकालॉजी) पर अब और कोई आक्रमण न करें।" अभी-अभी बेलग्रेड में हुए निर्गुट सम्मेलन में तो श्री गाँधी ने पृथ्वी रक्षा कोष बनाने तक का सुझाव दिया है। क्या हमारे समाचार पत्र प्रधानमंत्री से पूछेंगे कि आप देश के बाहर तो पर्यावरण को बचाने की बात करते हैं और प्रदेश के भीतर ऐसी योजनाओं को स्वीकृति देते हैं जो तकनीकी, पर्यावरण, सामाजिक न्याय एवं लाभ-हानि की दृष्टि से गलत साबित हो चुकी है ? बड़ी मुश्किल यह है कि हमारे देश का प्रभावशाली वर्ग अपने निहित स्वार्थ और ऐशो-आराम की खातिर पाखंडी और झूठा हो गया है।

जो लोग उदार शर्तों के आधार पर बाँध की स्वीकृति दिए जाने की वकालत करते हैं, वे होते कौन हैं यह फैसला करने वाले कि अमुक-अमुक शर्तें उदार शर्तें हैं, इसका फैसला उन्हें ही करने दीजिए जो प्रभावित हैं। यह कितनी अजीब बात है कि जिनकी खुशहाली के नाम पर बाँध बाँधा जा रहा है उनकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के अधिकार को माना ही नहीं जा रहा है।

उदार शर्तों के आधार पर बड़े बाँधों को स्वीकार करने की दलील देने वाले लोगों को क्या अब तक का इतिहास ज्ञात नहीं है ? सरकार ने पुनर्बसाहट का संपूर्ण नक्शा ही नहीं बनाया है यह बात बार-बार कही जा चुकी है। सरकार के पास न जंगल लगाने को पर्याप्त जमीन है और न ही लोगों को बसाने के लिए जमीन है फिर भी कुछ लोग उदार शर्तों की दलील दुहराते रहते हैं।

जहाँ तक विकल्प का सवाल है उसकी चर्चा यहाँ संभव नहीं है, लेकिन एक ही टिप्पणी पर्याप्त है। नदियों में तो बरसात का पाँचवाँ हिस्सा ही बहता है, तो क्या पानी के प्रबंध का एकमात्र विकल्प बड़े बाँध ही है तालाबों तथा अन्य विकल्पों के बारे में क्यों नहीं सोचा गया है ? बार-बार बिजली की भारी पैदावार की बात की जाती है क्या कभी किफायत की योजना बनाई गई है ? समाज और पर्यावरण की कीमत पर शहर को बहुत ही कम दाम पर बिजली प्रदान की जाती है जिसे शहर भारी मात्रा में फिजूल खर्च करता है, इस पर सोचना जरूरी है।

असली सवाल बहुत गहरा है, राष्ट्रहित और विकास के नाम पर 15 फीसदी या अधिक से अधिक 20 फीसदी लोगों को सुख-सुविधा मुहैया की जा रही है। इसके लिए एक बड़ी तादाद में गरीब लोगों को बलिवेदी पर चढ़ाया जाता है किसकी कीमत पर किसका विकास, अहम् प्रश्न यह है।

इस प्रश्न को समझकर विकास की ऐसी वैकल्पिक नीति चलानी होगी जो हमेशा-हमेशा के लिए कायम रहे तथा जो पर्यावरण की भी रक्षा करे और सामाजिक न्याय भी स्थापित करें।

(सप्रेस द्वारा पेनोस, पर्यावरण कक्ष एवं गाँधी शांति केंद्र के सहयोग से)

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 18-10-1989

खंजर देशी हो या विदेशी, गर्दन गरीब की ही होगी

बात एक घटना से शुरू करूं। पिछले दिनों मैं आंध्रप्रदेश में था। साईं बाबा की प्रसिद्ध स्थली पुट्टपर्थी के लिए धर्मावरम से जाते हैं। वहीं से करीब 25 कि.मी. दूर चेन्नाकोथ्थ- पल्ली में हम पहुँचे थे। गांव से थोड़ी दूर पर कुछ युवकों ने एक जमीन खरीदी है। जमीन के चारों तरफ पहाड़ियाँ हैं। लोग कहते हैं जमीन बंजर है। वहां कुछ पैदा नहीं हो सकता। साहसी या दुस्साहसी, जो भी आप कहें इन युवकों को, लेकिन उनका इरादा यह है कि वे वहां जंगल खड़ा करेंगे। उन्होंने जो संस्था बनाई है, उसका नाम है "टिम्बकटू कलेक्टिव।" कर्नाटक की सीमा पर बसे आंध्रप्रदेश के उपरोक्त गांव में कुछ रातें बिताने तथा "कलेक्टिव" के युवजनों से बात करने का अवसर मिला था। इतना और बता दूँ कि क्षणिक जोश और भावना में बह जाने वाले लोग वे नहीं हैं। अपनी जवानी के 14-15 वर्ष गांवों और भूमिहीनों के संघर्षों में बिताने के बाद उन्होंने अपने अनुभवों को टिम्बकटू कलेक्विट में ढालना चाहा था जिसे अब एक वर्ष से अधिक पूरा होने जा रहा है।

चाँदनी रात थी। पहाड़ों पर भी चाँदनी छिटक रही थी। अलाव के चारों ओर हम लोग बैठे थे। गजलों और गानों के दौर में जब विराम आया तब मैंने 'बबलू' से पूछा, 'आप लोगों के पागलपन का क्या कोई नतीजा निकलेगा ? क्यों अपनी जिंदगी बर्बाद कर रहे हो ?" बबलू असल में गांगुली हैं। एक अधेड़ युवक और दो बच्चों का बाप, कैसे अभी तक बबलू ही है यह बात महत्व की नहीं, महत्व की बात यह है कि जो निश्छल प्यार हमने वहां पाया वह सचमुच "बबलू" नाम को सार्थक करता है। "बबलू" ने अपनी पत्नी मेरी की तरफ देखा। शायद वे यह चाहते थे कि उत्तर पाने के पहले मैं इस बात से आश्वस्त हो लूं कि वे कितने खुश हैं। बबलू ने कहा, 'इतिहास केवल घटनाओं का जिक्र करता है, या कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि घटनाओं को जन्म देने वाली असंख्य प्रक्रियाओं को चित्रित करना उसके सामर्थ्य के बाहर है।" बात बहुत स्पष्ट हो गई थी। इसलिए फिर मैंने एक प्रश्न दाग दिया, "अकेली वैचारिक क्रांति प्रक्रिया से क्या होगा जब तक कि आपके पास राजनीतिक शक्ति नहीं है।"

काम करने वाले लोग बहस में अपना समय जाया नहीं किया करते। "सोचेंगे हम लोग।" कहकर श्री गांगुली ने बात तो समाप्त कर दी। लेकिन अगले दो दिनों की बैठक में जो कुछ हुआ उसमें से शायद कुछ उत्तर खोजा जा सकता है।

बैठक जन विकास आंदोलन (जविआ) की थी। जविआ उन समूहों का एक मंच है जो वैकल्पिक विकास की अवधारणा को लेकर काम कर रहे हैं। तय हुआ कि शीघ्र ही

प्रयोग के बतौर एक बीज मेला आयोजित किया जाएगा। 'कलेक्टिव', स्थानीय जैव-विविधता को आधार बनाकर न केवल इसके संरक्षण की आवश्यकता वरन इस पर होने जा रहे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आक्रमण संबंधी जानकारियाँ देगा तथा सतत् चल सकने वाली विकास की पद्धतियों के बारे में नई रोशनी देने का प्रयास करेगा।

इस समय देश में एक बहस प्रमुखता से चल रही है। विरोधी दल कह रहे हैं कि देश को विदेशी कंपनियों के हाथों गिरवी रखा जा रहा है और सरकार कह रही है कि देश को दिवालिया हो जाने से बचाने के लिए कड़े कदम उठाए जा रहे हैं। पिछले दिनों भाजपा और रामो-वामो ने एक साथ मिलकर कांग्रेस के खिलाफ वोट दिए ताकि वे कांग्रेस की आर्थिक नीतियों पर अपना विरोध प्रदर्शित कर सकें। कांग्रेस ने देशी और विदेशी पूँजी के मुक्त व्यापार की नीति अपनाई है। खुलेआम तो बात सामने नहीं आ रही है लेकिन कई कांग्रेसी इसे नेहरू नीति के विरुद्ध मान रहे हैं। भाजपा यद्यपि मुक्त व्यापार की समर्थक है लेकिन विदेशी पूँजी को देशी पूँजी की होड़ में खड़ा करने के खिलाफ है। वामो हमेशा से अमेरिकी पूँजी की होड़ में खड़ा होने के खिलाफ है और हमेशा से अमेरिकी पूँजी के विरुद्ध बोलता रहा है। रामो की नीति बिखरी हुई है लेकिन समाजवादियों के प्रभाव में विदेशी पूँजी और मुक्त व्यापार के खिलाफ आवाज उठाई जा रही है। सतही तौर पर ऐसा लगता है कि सरकारी पार्टी और विरोधी पार्टियों में बड़ा भारी फर्क है। सरकारी पार्टी के अंतर्गत भी, और विरोधी दलों में आपस में भी नीतियों का बुनियादी भेद नजर आता है। लेकिन क्या सचमुच ऐसा है ?

इसका उत्तर समझने के लिए एक सवाल समाने रखना होगा। करोड़ों डॉलर का कर्ज लेने के बाद भी हमारी आर्थिक व्यवस्था डाँवाडोल क्यों है तथा हर नवजात शिशु पर हमने 4 हजार रुपए का कर्जा क्यों लाद दिया है ? भाजपा या रामो-वामो की भी सरकार यदि बनती है तो वह भी महंगाई और बढ़ती बेरोजगारी पर कैसे रोक लगाएगी ? कांग्रेस कहती है कि मुक्त व्यापार से कुशलता बढ़ेगी और हम विकसित देशों की होड़ में खड़े हो सकेंगे। भाजपा का भी कमोबेश उद्देश्य यही है कि हम व्यापार की होड़ में आगे बढ़ जाएं। साम्यवादियों, समाजवादियों और नेहरूवादियों का भी सोच यही है कि हम पश्चिमी देशों का मुकाबला करने लायक बन जाएं। मुक्त व्यापार की धारा और नियंत्रित व्यापार की धारा दोनों का मुख्य आर्थिक आधार, केंद्रित उद्योगीकरण है। फर्क इतना ही है कि प्रथम धारा इसे मुक्त व्यापार के जरिए हासिल करना चाहती है। दूसरी धारा इसे तथाकथित विकास नियंत्रित व्यापार के जरिए हासिल करना चाहती है। दोनों धाराओं का आधार अधिकतम पैदावार करके रुपया कमाना है तथा निर्यात बढ़ाना है। किसकी कीमत पर किसके लिए पैदावार, यह विषय इनके लिए गौण है। यों विकेंद्रित व्यवस्था की बात सभी दल करते हैं, लेकिन आर्थिक ढाँचों में बदलाव कोई भी नहीं चाहता। इसलिए विकेंद्रीकरण केवल नारा है, कार्यक्रम किसी का भी नहीं बना।

इसमें कोई शक नही कि नियंत्रित व्यापार (समाजवाद) की धारा ने समता की जबर्दस्त भूख जगाई है और मानवीय संवेदना की तीव्र तड़पन प्रदर्शित की है। इस कारण पूँजीवाद की शक्ल भी बदल गई, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि समाजवादी धारा की अगुआ शक्ति सोवियत संघ ने भी अधिकतम पैदावार और पूँजी निर्माण की पूँजीवादी प्रणाली को ही अपनाया। इसका जो हश्र होना था हुआ और उसकी शक्ति बिखर गई। केंद्रित औद्योगीकरण और व्यापार की पश्चिमी होड़ में सोवियत संघ पिट गया। सोवियत संघ ही हार और छद्म समाजवादी अर्थतंत्र के धूरे पर अब हमारे देश में मुक्त व्यापार की हवा बहाई जा रही है। श्री नरसिंह राव बिल्कुल सच कहते हैं कि वे नेहरू की नीतियों पर ही चल रहे हैं। उचित होगा कि वे गांधी का नाम न लें। विदेशी कंपनियों का का विरोध करके विरोधी भी सिर्फ नेहरू की नीतियों को ही चलाना चाहते हैं।

'जन-विकास आंदोलन' की बैठक और उसके जैव-विविधता मेले का जिक्र इसलिए किया गया है कि यह एक बानगी है जिसके आधार पर परिवर्तनशीलता या क्रांतिकारिता को नापा जा सकता है। जो लोग जागरुक हैं उन्हें यह बताने की जरूरत नही कि हथियार और उपभोक्ता सामग्री के व्यापार की सीमाएं दिखाई दे रही हैं। इसलिए अब पश्चिम अपनी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जरिए कृषि प्रधान देशों में रोटी (अनाज) का व्यापार करना चाहता है। बीजों की विविधता उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों की सबसे बड़ी दौलत है। इस विविधता को जिसने हजारों वर्षों से किसान को विपरीत मौसम और कीटों से बचाया है, खत्म कर देने की साजिश चल रही है। बीजों की एकरूपता बढ़ाई जा रही है, ताकि तीसरी दुनिया के किसान बीज, खाद और कीटनाशकों के मामले में पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और पश्चिमी देशों पर निर्भर हो जाएं। 'हरित क्रांति' के जरिए पहले से ही बीजों की विविधता खत्म की जा रही है। किस राजनीतिक दल ने हरित क्रांति के खिलाफ आवाज उठाई ? क्या वे नासमझ हैं ? आर्थिक नीतियों पर जो बहस चल रही है उसका लुब्बोलुआब यह है कि गरीब को सिर्फ इतनी ही आजादी है कि वह यह बता दे कि उसे किस खंजर से हलाल किया जाए- विदेशी पूँजी से बने खंजर से या देशी पूँजी से बने खंजर से। यह भ्रम है कि पश्चिम समृद्ध है और हम गरीब हैं। पश्चिम ने मशीन के बल पर हमारी समृद्धि के स्रोतों को लूटा है और दौलत बनाई है। हम किसे लूटेंगे ? हम अपने ही जंगल जमीन और पानी को लूट रहे हैं ताकि 10 से 20 फीसदी तक लोग दौलतमंद बन जाएं, रुपया और मशीन समृद्धि नहीं है बल्कि जल, जंगल और जमीन की पैदावार समृद्धि है। हमारे संकटकालीन स्वास्थ्य का न तो यह निदान है कि मुक्त व्यापार हो और न ही यह कि नियंत्रित व्यापार हो। इसका तो निदान तभी होगा जब यह तय होगा कि मनुष्य का जल, जंगल और जमीन से रिश्ता क्या हो। तभी फुगावा रुकेगा और करोड़ों को रोजगार उपलब्ध होंगे।

संगठित वर्ग और उनके ट्रेड यूनियन भी विदेशी पूँजी निवेश का विरोध कर

रहे हैं। यह अच्छी बात है, लेकिन वे विकास की अवधारणा के बारे में अपना नजरिया साफ करें। खुशी की बात है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भीं 'स्वदेशी जागरण अभियान' के जरिए (अपनी संस्था को पृष्ठभूमि में रखकर) विदेशी पूँजी के विरोध के अभियान में पहल कर रहा है। हालाँकि यह स्पष्ट नही है कि इस स्वदेशी की आधार नीति क्या है ? 'स्वदेशी जागरण' केवल आर्थिक ही नही है यह आध्यात्मिक भी है। बड़ी मशीन और बड़े बाँधों के चलते क्या आध्यात्मिक मूल्य पनपेंगे ?

अंत में एक और आंदोलन का जिक्र करना लाजिमी है। देश के जाने माने गांधीवादियों, समाजवादियों, पर्यारणवादियों, चिंतकों, ट्रेड यूनियनों ने 'आजादी बचाओ आंदोलन' चलाया है। गैर दलीय आधार पर इस आंदोलन की शुरूआत हुई है। इस आंदोलन के आयोजकों और भागीदारों में अधिकांश लोग न केवल विदेशी पूँजी निवेश के विरुद्ध हैं बल्कि वे पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता और आर्थिक संरचना को भी समाप्त करना चाहते हैं। 'बबलू' जैसे हजारों युवक और युवतियां दूर-दराज के इलाकों में अपने काम और संघर्ष के जरिए समाज को बदलने में लगे हैं यदि उपरोक्त आंदोलन इन स्वाभाविक प्रक्रियाओं को पिरोने का काम कर सका तो शायद एक नई रोशनी आने वाली दुनिया को मिल सके। इन मैदानी समूहों को भी यह समझना होगा कि बिना वैचारिक क्रांति के राजनीतिक शक्ति चाहे पाखंड हो, लेकिन बिना लोकशक्ति के वैचारिक क्रांति भी बेमानी है।

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 19 मार्च, 1992

नियोगी और जन विकास आंदोलन

मध्यप्रदेश में घटी दो घटनाओं का जिक्र करना जरूरी है। इन घटनाओं का संबंध बहुत व्यापक है। इनसे देश के कुछ बुनियादी मुद्दे जुड़े हैं। इन घटनाओं के बीच घटा अंतराल तो दो वर्षों का है, लेकिन दोनों ही घटनाएं एक ही दिन घटी हैं। तारीख का मिलन तो एक संयोग ही होता है, लेकिन यदि घटनाओं का रिश्ता नजदीकी है तो तारीखों का संयोग मात्र संयोग न होकर महत्वपूर्ण हो जाता है।

करीब तीन वर्ष पूर्व 28 सितंबर 1989 को म. प्र. के खंडवा जिले में स्थित हरसूद कस्बे में जो नर्मदा सागर परियोजना में पूरा का पूरा डूब रहा है, एक बड़ी रैली हुई थी। कम-से-कम 60 हजार लोग जिनमें अधिकांशतः आदिवासी उपस्थित हुए थे। कर्नाटक के साहित्यकार शिवराम कारंत, मेधा पाटकर और बाबा आमटे से लेकर सिने तारिका शबाना आजमी, राजनेता मेनका गांधी व विद्याचरण शुक्ल उपस्थित थे। विशेष बात यह है कि करीब 150 स्वयंसेवी तथा संघर्षशील संगठनों के सैकड़ों युवक और युवतियां इस रैली में हिस्सेदारी कर रहे थे। घाटी के लोगों का तो जैसे सैलाब उमड़ पड़ा था। केवल आमसभा में ही नहीं, चाहे मशाल जुलूस हो अथवा रैली में शरीक होने वाली टोलियां हो, यानि सभा के बाद निकला नाचता गाता विशाल जुलूस हो, सभी एक स्वर से यही कह रहे थे कि हमें 'विनाश नहीं विकास चाहिए।' घाटी में पहली बार इतनी बड़ी ताकत से यह स्वर गूंजा था कि नर्मदा घाटी की लड़ाई केवल एक या दो बांध की लड़ाई नहीं है। यह लड़ाई उस सभ्यता को बदलने की लड़ाई है, जो क्रूरता, अन्याय, हिंसा, अंधी और भोगविलास पर टिकी हुई है। कलागुरु विष्णु चिंचालकर के नेतृत्व में हरसूद में बना स्मारक भी यही आवाज उठा रहा है।

उपरोक्त घटना घटी पश्चिमी, मध्यप्रदेश में और दूसरी घटना घटी इसी प्रदेश के पूर्वी-दक्षिणी इलाके में। पिछली दो दशाब्दियों से यहां मजदूरों का एक नए किस्म का अद्वितीय आंदोलन चल रहा है, जिसमें किसान तथा आदिवासी भी जुड़ गए हैं। मजदूरों के नतृत्व में चल रहा यह आंदोलन अन्य ट्रेड यूनियनों की तरह केवल आर्थिक मांगों तक सीमित नहीं है। यह भी वर्तमान सभ्यता और व्यवस्था को बदल डालने का आंदोलन है। ऊपर लिखी गई पंक्तियों में जिस 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' का जिक्र है, उससे स्थापित व्यवस्था अपने को बहुत अधिक असुरक्षित महसूस नहीं कर रही थी। विदेशी एजेंसियों की मदद एवं अपार धनराशियों की प्राप्ति की आशाएं उन्हें आश्वस्त करती रही हैं कि वे धन-बल और प्रचार के बल पर आंदोलन को तोड़ सकेंगे, लेकिन छत्तीसगढ़ में चल रहे 'छत्तीसगढ़-मुक्ति मोर्चे' की लड़ाई तुलनात्मक रूप से छोटे पूंजीपतियों और छोटे ठेकेदारों के हितों पर चोट कर रही थी। जिनके हाथ लंबे नहीं

उनकी रणनीति में सब्र और चतुराई की भी कमी रहती है। श्री शंकर गुहा नियोगी की हत्या कर दी गई। 28 सितंबर को ही यह हत्या हुई थी, जो कि अब नर्मदा घाटी में भी परिस्थितियां बदल रही हैं। स्वतंत्र समीक्षा दल (मोर्स कमेटी) की इस दो टूक सिफारिश के बाद कि विश्व बैंक को सरदार-सरोवर से अपने हाथ खींच लेना चाहिए, परियोजना की विश्वसनीयता को एक बड़ा धक्का लगा है। विदेशी मददें झमेले में पड़ गई हैं। हुकूमतें तो अंधी होती हैं, कौन कह सकता है कि जो खेल छत्तीसगढ़ में खेला गया है यह नर्मदा घाटी में नहीं खेला जाएगा।

नियोगी की हत्या और उसके बाद 1 जुलाई को हुए नृशंस गोली कांड की देशभर में प्रतिक्रिया हुई है। ट्रेड यूनियनों और राजनैतिक दलों ने भी इस कांड की निंदा की है। 28 सितंबर 89 को जो समूह हरसूद में इकठ्ठा हुए, उन्होंने आपसी मेलजोल बढ़ाने, संवाद स्थापित करने तथा एक जैसे कार्यक्रमों पर मिलीजुली कार्रवाईयां करने के लिए 'जन-विकास आंदोलन' का निर्माण किया था। गत 29-30 जुलाई को इसकी एक बैठक बंबई में हुई थी, जिसमें अनेक समूह शामिल हुए थे, जिन्होंने वहां पर तय किया था कि 22 से 28 सितंबर तक नियोगी सप्ताह मनाया जाएगा तथा इसके माध्यम से नियोगी के विचार 'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा' (छमुमो) के संघर्ष और बलिदान तथा राज्य की दमन नीति के संबंध में जानकारियां फैलाई जाएंगी। हिन्दी इलाकों से कहीं अधिक तादाद में यह सप्ताह गैर-हिन्दी इलाकों में मनाया जाएगा, ऐसा पता चला है। बंगाल, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के अनेक समूहों द्वारा यह सप्ताह मनाए जा रहे हैं। म. प्र. में 'छमुमो', 'एकता परिषद', 'खेडूत मजदूर चेतना संगठन', 'आदिवासी किसान संगठन' एवं 'समता संगठन' मिलकर करीब-करीब सभी जिलों के कुछ स्थानों पर यह सप्ताह मनाने जा रहे हैं।

नियोगी केवल एक सफल ट्रेड यूनियन या राजनैतिक नेता मात्र नहीं थे, उनमें इस बात की भी ललक थी कि वे सड़ रही सभ्यता को जड़ से बदल डालें। यही कारण था कि उनके निर्देशन में चले ट्रेड यूनियनों और संगठनों ने शराब के खिलाफ भी जेहाद छेड़ा, शहीद भगतसिंह अस्पताल भी खोला, स्कूल भी खोला और सहकारी संस्थाएं भी बनाई, महिलाओं की मुक्ति का आंदोलन भी चलाया और मजदूर किसानों को एक मंच पर लाए। श्री नियोगी ने कार्यकर्ताओं को विचार और रणनीति का प्रशिक्षण भी दिया। यही कारण था कि जब पिछले 28 सितंबर को नियोगी की हत्याकांड से विचलित और हतप्रभ डेढ़ लाख लोग श्रद्धांजलि के लिए एकत्रित हुए थे, तो किसी ने एक कंकरी भी फेंककर अपने गुस्से का इजहार नहीं किया था। ऐसी अनुशासित फौज पर जब हिंसा का आरोप लगाया जाता है तब मेरे जैसे अनेक लोगों की मान्याता पुष्ट होती है कि नक्सलवादी तो इस देश को हिंसा की ओर धकेलने में कामयाब नहीं होंगे, लेकिन सरकार जरूर अपने कारनामों से देश में हिंसा फैला देगी।

जाने पहिचाने ट्रेड यूनियन के नेताओं में शायद शंकर गुहा नियोगी एकमात्र ऐसे नेता हैं, जिन्होंने अपने कार्यक्रमों में पर्यावरण को बचाने के कदम भी शामिल किए। आज से करीब सात वर्ष पूर्व नियोगी के नेतृत्व में 'अपने जंगल को पहिचानो' नामक कार्यक्रम चालू किया गया था। जैसे हम अपने परिचित की दुर्घटना से दुःखी हो जाते हैं, उसी तरह हम पेड़ के कट जाने पर भी दुःखी होंगे, यदि हमारा उन पेड़ों से रिश्ता क्या है, यह हम समझ लें। यूनियन के सदस्यों ने भारी तादाद में पेड़ लगाए हैं, जो अब जंगल का रूप ले चुका है तथा इसे 'अपना जंगल' कहकर मजदूर गौरव का अनुभव करते हैं। सरकारी सामाजिक वानिकी में व्यापारिक दृष्टिकोण रहता है तथा एक जैसे पेड़ लगाए जाते है, लेकिन नियोगी का विचार इस संबंध में बहुत स्पष्ट था तथा उन्होंने यूक्लेप्टिस अथवा पाइन के बजाय बांस, सलूफी, महुआ, आम, जामुन, फरहर, शीशम, सेर, सागौन, नीम, करी, नीबू, रूख और अरहर के पेड़ लगवाए।

नर्मदा घाटी का आंदोलन इन्दौर संभाग में भी चल रहा है। इन्दौर बड़ा जागृत शहर समझा जाता है, लेकिन इन्दौर के ट्रेड यूनियन नेताओं को कभी मैंने इस आंदोलन में हिस्सेदारी करते हुए नहीं देखा। लेकिन सुदूर इलाके से शंकर गुहा नियोगी और उनके इलाके के सैकड़ों मजदूर किसान और महिलाएं नर्मदा घाटी में आते रहे हैं। इसका कारण यह है कि नियोगी की समझ बहुत व्यापक थी। नियोगी के द्वारा चलाए गए काम सचमुच इस वाक्य के साक्षी हैं, नियोगी व्यक्ति नहीं धारा है, जो छत्तीसगढ़ की गली-गली में आपको दीवालों पर लिखा हुआ मिलेगा।

28 सितंबर को हरसूद में जो बिगुल बजा था उसी से मिलते-जुलते संदेश को लेकर छमुमो का आंदोलन चल रहा है। 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' और भिलाई तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में छमुमो के नेतृत्व में चल रहा आंदोलन मुख्य रूप से उस वर्ग का आंदोलन है, जो वर्तमान मशीनी विनाश की प्रक्रिया में उजाड़े और फेंके जा रहे हैं। इस तरह के आंदोलन केवल म. प्र. में ही नहीं, संपूर्ण देश में फैल रहे हैं। हरसूद के संकल्प मेले के ठीक दो वर्ष बाद 28 सितंबर को ही नियोगी की शहादत केवल छत्तीसगढ़ के मजदूर-किसानों के लिए ही नहीं थी, नियोगी विकास की एक वैकल्पिक व्यवस्था के लिए लड़ रहे थे और उनकी शहादत उस विचार के लिए थी, जिस विचार को लेकर आज न केवल इस देश में, बल्कि पूरे विश्व में लड़ाइयां चल रही हैं। खोने के लिए जिसके पास कुछ नहीं है, वह यदि सर्वहारा है (प्रोलेटेरिएट) तो शायद पहली बार दुनिया के सर्वहारा एक होते दिखाई दे रहे हैं। छत्तीसगढ़ के मजदूरों की शहादत इसमें बेमिसाल है।

साभार- सप्रेस

छत्तीसगढ़ : सामाजिक सांस्कृतिक क्रान्ति की व्यवस्था को चुनौती

पहाड़ियों की ढलानों और तराईयों में बसी बस्तियां कच्चे घर और झोपड़ियां बड़ी खूबसूरत लगती हैं, लोग अपनी गर्मी की छुट्टियां बिताने ऐसे मकानों में रहना पसंद करते हैं, इसलिए जब दल्ली राजहरा की लौह अयस्क की पहाड़ियों पर ऊपर-नीचे बसी बस्तियों को देखा तो बड़ा अच्छा लगा, लेकिन जब लोगों से बात हुई और उनकी रहन-सहन की भौतिक स्थितियां देखी तो सारा रोमांच हवा की तरह उड़ गया। इन स्थानों पर रमणीय स्थलों की तरह कोई म्यूनिसिपैलिटी या टाउनशिप थोड़े ही होती है, जो उनके पानी, संडास नालियों और रास्तों की व्यवस्था करे। जिसे जहां जगह मिलती है, बस जाता है, चाहे जहां रास्ते बन जाते हैं और नालियां बन जाती हैं, इसके अलावा कोई चारा भी नहीं है। सुबह उठकर कम से कम 4-5 कि. मी. पहाड़ पर चढ़कर लौह अयस्क खोदने जाना होता है। दल्ली-राजहरा का लोहा दुर्ग स्थित भिलाई स्टील प्लांट को भेजा जाता है, लेकिन बी.एस.पी. कोई बस वगैरह की व्यवस्था नहीं करती कि लोग दूर रहकर समय पर अपने कर्तव्य स्थल तक पहुंच सकें। न ही खदान में काम कर रहे मजदूरों की भौतिक आवश्यकताओं की समुचित व्यवस्था करती है।

करीब दस हजार मजदूर इन बेतरतीब बस्तियों में रहते हैं। अंदाजन तीस चालीस हजार लोग वहां रहते होंगे। शहर की आबादी एक लाख के आस-पास है। शहर में भी कोई म्युनिसिपैलिटी वगैरह नहीं है। व्यापारी हैं, अफसर हैं, कर्मचारी हैं। उन्होंने भी अपने बड़े-बड़े और पक्के मकान बना लिए हैं, जो सब अनधिकृत हैं, इस अनधिकृत शहर में एक छोटी-सी पहाड़ी पर मजदूरों का अस्पताल है जिसे शहीद अस्पताल के नाम से जाना जाता है तथा जिसे शंकर गुहा नियोगी के नेतृत्व वाली छत्तीसगढ़ खदान श्रमिक संघ चलाता है। वर्तमान माहौल के हिसाब से यही बड़ा आश्चर्यजनक लगता है कि यूनियन अस्पताल चलाये और वह भी सी. एम. एस. एस. जैसा विरोधी और लड़ाकू श्रम संगठन। लेकिन जब मुझे मालूम पड़ा कि अस्पताल मजदूरों की श्रद्धा का केन्द्र है, मजदूर बी. एस. पी. (भिलाई स्टील प्लाट) के अस्पताल में अपना इलाज कराते हैं और यूनियन के कार्यकर्ता नियमित अवैतनिक सेवा करते हैं जिसे 'जनता सेवा' कहा जाता है तो सचमुच हैरत हुई। मैं जब पिछले अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में वहां था तब पाकिस्तान, बंगलादेश और लंका के कुछ युवा संगठनों के पन्द्रह प्रतिनिधि जिनमें महिलाएं भी थी, इस अस्पताल की तथा सी. एम. एस. एस. की अन्य गतिविधियों को देखने पहुंचे थे।

अस्पताल में कार्यरत दो बंगाली डॉक्टर डॉ. विनायक सेन एवं डॉ. सेवाल जाना

जो दिनरात अस्पताल में ही लगे रहते हैं, से अस्पताल की आवश्यकता, उसके विकास और भविष्य के बारे में लंबी चर्चाएं हुई। 'जनता सेवा' प्रदान करने वाले सैकड़ों लोगों और अस्पताल में काम कर रही नर्सों से भी चर्चाएं हुई।

छत्तीसगढ़ी बड़ा भोला-भोला प्राणी है-श्रमकि नेता शंकर गुहा नियोगी बातचीत के दौरान बता रहे थे। यूनियन के कार्यकर्ता ने उन्हें खबर दी कि लोग अपने जेवर बर्तन और पशु बेचते चले जा रहे हैं और कर्जा प्राप्त करने के लिए किसी आवेदन पत्र पर सैकड़ों रुपया खर्च कर रहे हैं। श्री नियोगी को आश्चर्य हुआ इतना आसानी से कर्जा कहाँ से मिल रहा है। तहकीकात करने पर पता चला कि कुछ धोखेबाजों ने पर्चा छपवाकर बंटवा दिया था जिसमें यह मांग की गई थी कि कर्जा दिलवाया जायेगा। लोग मांग पत्र को ही कर्जे का सौलभ्य समझकर सैकड़ों की संख्या में कर्जा लेने खड़े हो गए थे और घर बर्बाद कर बैठे। ऐसी अनेकों घटनाएं चलते रास्ते मिल जायेगी जो साबित करती है कि छत्तीसगढ़ी कितनी भोला भाला प्राणी है।

ऐसी भोली भाली कौम को अन्ध विश्वास में जकड़ देना और फिर शोषण करना बड़ा आसान है। अस्पताल खुलने के पूर्व लोगों की मान्यता थी कि 'जिचकी' (गर्भवती महिला) को पानी नहीं देना चाहिए। इसी तरह आलसमाता (टाइफाइड) में खाना पानी बंद कर देना चाहिए। यूनियन के कार्यकर्ताओं ने प्रदर्शनियाँ लगाई, बैगा के झाड़फूंकी उपचार का भंडाफोड़ किया, पानी की आवश्यकता को समझाया और इस तरह सैकड़ों लोगों की जान बचाई जो अन्धविश्वास और पानी की कमी (डी हायड्रेशन) के कारण ही मर जाते थे। यूनियन के कार्यकर्ता जनता सेवा देने अस्पताल में छः-छः घंटे काम करते हैं और यहां तक कि रात को भी ड्यूटी देते हैं। सुबह 5-7 मील पहाड़ चढ़ते हैं लोहा खोदते हैं और उसके बाद अस्पताल में आकर अवैतनिक सेवाएं प्रदान करते हैं। नर्सों के पद पर अधिकांश मजदूरों की पढ़ी लिखी लड़कियां काम करती हैं जिन्हें अस्पताल ने ही प्रशिक्षित किया है।

पिछली कई दशाब्दियों से बड़ी जातियों ने छोटी जातियों को दबाकर रखा है। उनके आत्म सम्मान को कुचला है और उनके इतिहास को गाड़ दिया है, ताकि वे आने वाली सदियों तक बेजुबान संस्कृति की तरह अपना जीवन बिताते रहें। वीर नारायसिंह के नाम पर अब म. प्र. की सरकार जलसा मनाती है, लेकिन इस स्वतंत्रता सेनानी को खोजने का काम इतिहासकारों ने या सरकार ने नहीं किया। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि छत्तीसगढ़ की अस्मिता को ऊंचा उठाने वाले वीर नारायणसिंह की खोज शंकर गुहा नियोगी ने की थी। छत्तीसगढ़ में एक गाथा प्रचलित है कि एक राजा चांदनी रात में आता है और ललकारता है 'अंग्रेज कहाँ है जिन्होंने हमारे घर जला दिए।' श्री नियोगी को जब इसके बारे में पता चला तो उन्हें इस गाथा के पीछे इतिहास की खुशबू आई। वे खोज करते रहे और अंत में उन्हें एक वृद्ध मिला। उसने वीर नारायणसिंह के किस्से

सुनाए। नियोगी ने इन किस्सों को इतिहास का रूप दिया। शुरू में नियोगी पर प्रबुद्ध लोगों ने विश्वास नहीं किया, लेकिन अब वीरनारायण सिंह को सभी इतिहास पुरुष मानने लगे हैं। छत्तीसगढ़ खदान श्रमिक संघ केवल आर्थिक लड़ाई तक ही सीमित नहीं है। ऊपर बताया गया है कि स्वास्थ्य सेवाओं के द्वारा उन्होंने सामाजिक परिवर्तन किए। यहां यह लिखना भी जरूरी है कि उसका एक सांस्कृतिक संगठन भी है, जिसका नाम है 'नवा अंजोर'। सी. एम. एस. का यह सांस्कृतिक प्रकोष्ठ ड्रामा, संगीत आदि क्रियाकलापों के जरिये छत्तीसगढ़ी जनता में अपनी पहचान और अस्मिता का गौरव पैदा कर रहा है। वे गांव -गांव घूमते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं और लोगों से बात करते है।

नियोगी का कार्य क्षेत्र केवल मजदूर नहीं है। उन्होंने छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा गठित किया है जिसमें गांवों के मजदूर और किसान शरीक हैं। इस कारण दुर्ग और कांकेर क्षेत्र में वे एक राजनैतिक शक्ति बन गए हैं। इसके अलावा राजनांदगांव की कपड़ा मील के मजदूरों तथा बालाघाट के खदान के मजदूरों में भी उनका प्रभाव बढ़ा है। दल्ली राजहरा के करीब 8 हजार मजदूर समय पड़ने पर मजदूर आंदोलन के लिए 5 रु. प्रतिमाह तथा अनाज देते रहते हैं। दो तरह के लोग श्री नियोगी का विरोध कर रहे हैं, एक तो यथास्थितिवादी जिनके हाथ में राजनैतिक शक्ति भी है और दूसरे कम्युनिस्ट यूनियन के लोग जिन्हें प्रतिद्वंद्विता में सी. एम. एस. ने बहुत पीछे धकेल दिया है।

अध्यक्ष महादेव साहू ने बतलाया कि 1975 की बात है मशीन पर काम करने वाले मजदूरों को 360 रु. बोनस दिया गया था, जबकि हाथ से खुदाई करने वालों को केवल 70 रु. दिया गया था। इससे असंतोष भड़क उठा था। उस समय न इंटक ने मजदूरों का साथ दिया और न ही एटक ने। बस यहीं से एक नई यूनियन का जन्म हुआ था जिसके नेतृत्व के लिए कुछ दिनों बाद श्री शंकर गुहा नियोगी को बुलाया गया था।

राजनांदगांव में एक समाजवादी नेता से नियोगी के बारे में चर्चा चल रही थी। मैंने पूछा था क्या नियोगी पक्के मार्क्सवादी विचारधारा के हैं? उनका जवाब था -कौन कहता है कि नियोगी कम्युनिस्ट है। जो ठेकेदारी प्रथा का समर्थन करता है वह कम्युनिस्ट कैसे हो सकता। इसलिए जब मैं दल्ली राजहरा में सी. एम. एस. एम. यूनियन के कार्यालय में पहुंचा तो एक खोजी पत्रकार की तरह सबसे पहले मैंने कहा कि मैं आपके संगठन के पर्चों और मांगों की फेहरिस्त देखना चाहता हूं। उनकी फाइल पर जब मैं नजर दौड़ा रहा था तो मुझे स्पष्ट दिखाई दिया कि हमारे समाजवादी नेता कितने भ्रम में हैं। श्री नियोगी ने हमेशा इस बात की मांग की है कि जो खुदाई ठेकेदारों के द्वारा होती है उसे भिलाई स्टील प्लांट खुद करवाये। सी. एम. एस. का झगड़ा मशीनीकरण और गैर मशीनीकृत मजदूरी का है। बैलाडीला में लौह अयस्क की खदानों की खुदाई का काम मशीनों से हुआ तो दस हजार छत्तीसगढ़ी बेकार हुए। यह नजदीकी अनुभव दल्ली

राजहरा के मजदूरों को खलता है और वे किसी भी कीमत पर बैलाडीला की मौत को दल्ली राहजरा पर मंडराने नहीं देना चाहते।

साइकिल पर सवार होकर जब पहाड़ियों के शिखर पर पहुंचा तो हांफ गया था, लेकिन मजदूर तो रोज ही उतनी दूर अधिकतर पैदल और कोई-कोई साइकिल अथवा ट्रकों से तय करते हैं। दल्ली राजहरा में खदानों की जो 'बेल्ट' है, वह देश की सबसे अच्छी बेल्ट है, क्योंकि इसमें खतरे सबसे कम हैं-ऐसा माना जाता है। इसका कारण मजदूरों का संगठन ही है। खदान देखते-देखते मुझे एक बड़ा भारी ढेर दिखाई दिया। उत्सुकतावश मैंने पूछा यह क्या है ? मार्गदर्शक ने बड़ी सरलता से जवाब दिया-साब ये 'रोजी' है। मेरी कुछ समझ में नहीं आया कि उस सूखे इलाके में 'रोज' या रोजी कहां से आ गया। बाद में मालूम पड़ा कि करीब 400 मीटर लंबा 200 मीटर चौड़ा और 200 मीटर गहरा वह पहाड़ था और स्टाफ यार्ड जहां खोदा गया लोह अयस्क एकत्रित किया जाता है, यह महीनों से पड़ा हुआ है, उठाया ही नहीं जा रहा है। इसके अलावा एक और ऐसा ही लोह अयस्क का पहाड़ उठाये जाने के इंतजार में पड़ा हुआ है। स्पष्ट है खदानों में पैदावार अधिक है, बी. एस. पी. इसका उपयोग नहीं कर रही है, लेकिन मशीन से पैदावार की जिद्द जारी है। यूनियन ने आंकड़े देकर यहां तक साबित किया है कि जो खर्च मशीनीकृत पैदावार में होता है, उससे कहीं कम खर्च अर्द्ध मशीनीकृत खुदाई में होता है।

मशीनीकृत पद्धति में लगे मजदूर भयंकर विपरीत भौतिक परिस्थितियों में जी रहे हैं। 70 फीसदी मजदूर टी. बी. के मरीज हो गए हैं तथा अन्य पेट में दर्द, अस्थमा आदि बीमारी से पीड़ित हैं तथा 75 फीसदी पाइल्स के शिकार हो चुके हैं। 35 की उम्र के बाद ही बूढ़े हो जाते हैं और अपनी रिटायरमेंट की उम्र तक भी नहीं पहुंच पाते। कारखाने में जहां स्क्रीनिंग होती है, भयंकर धूल उड़ती है जहां 'फाइन्स' निकाला जाता है वहां भयंकर गर्मी होती है। पानी नहीं डाला जा रहा था। हमने जांच की तो पाया कि शावर्स के नल ही खराब थे। बड़े-बड़े डोजर्स जब टनों माल इकट्ठा करते हैं और बड़े-बड़े शावलैस जब उस माल को उठाकर बंकरों में डालते हैं, तो ऐसा लगता है कि गिरते पड़ते बीमार मानवों को मशीन इकट्ठा करती है, उन्हें उठाती है और कब्रस्तान में पटक देती है।

इस मशीनी सभ्यता के खिलाफ शंकर गुहा नियोगी के नेतृत्व में जबरदस्त मजदूर आंदोलन खड़ा हुआ है। यह आंदोलन केवल बोनस की लड़ाई नहीं लड़ता है। संपूर्ण जीवन पद्धति ही बदलना चाहता है। यूनियन अस्पताल चलाए, अंध विश्वास से लड़े, स्कूल चलाये, सहकारी संस्थाएं बनाये, मजदूरों के साथ किसानों का संगठन भी खड़ा करे, वर्तमान व्यवस्थितिवादी पूंजीवादी आर्थिक नीतियों पर प्रहार करे, अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों के जरिये एक नई वैचारिक क्रांति की अगुवाई करे और छत्तीसगढ़ में बस गए लोग यदि इसमें कोई दिलचस्पी न लें तो क्या कहा जाना चाहिए। क्या वे

नहीं चाहते कि छत्तीसगढ़ में चेतना पैदा हो ? जो लोग बाहर से आकर छत्तीसगढ़ में बस गए हैं वे भी छत्तीसगढ़ की मुक्ति का आंदोलन तो चलाते हैं, लेकिन क्या बात है कि जब गरीब खड़ा होता है तो मूक दर्शक बन जाते हैं ? क्या उन्हें भय है कि शोषित संगठित हो गया तो उनके हितों को चोट पहुंचेगी ? क्या वे छत्तीसगढ़ की मुक्ति का राग सिर्फ इसलिए अलापते हैं कि उन्हें और अधिक शोषण के लाभ मिलते रहे ?

जो लोग यह कहते नहीं थकते कि राजनीति गंदी हो गई है तथा राजनैतिक दल निरर्थक हो गए हैं, वे भी जब बुनियादी सवालों से जूझने वाले मैदानी संगठनों से नहीं जुड़ते हैं तो यही कहा जा सकता है। शोषण और सामाजिक न्याय की बात तो बड़े जोर शोर से होती है, क्रांतिकारिता चलती है, लेकिन जैसे ही स्थापित व्यवस्था टूटती हुई नजर आती है वे अपना हाथ खींच लेते हैं। यही मुख्य कारण है कि इस देश में परिवर्तन की धारा नहीं बह रही है। क्या नई पीढ़ी इस चुनौती को स्वीकार कर सकेगी ?

साभार - अमृत संदेश, रायपुर, 17-2-1985

नामुमकिन है, एक धारा की हत्या

'नियोगी एक व्यक्ति नहीं एक धारा है।' पोस्टरों और दीवारों पर लिखी हुई ये पंक्तियाँ और नारे जो मैंने दल्ली-राजहरा और भिलाई में देखे और सुने, ताजा होकर मेरी स्मृति में बार-बार उभरते हैं, जबकि मैं एक हजार कि. मी. दूर अपने दूसरे कामों में लगा हुआ हूँ। क्या सचमुच नियागी एक धारा है ? और यदि है तो क्या सचमुच यह धारा जिंदा रहेगी ? नियोगी की धारा 'मुख्यधारा' तो नहीं थी ? वह तो मुख्यधारा से विपरीत चलने वाली धारा थी, स्थापित मान्यताओं को बदलने वाली धारा थी। क्या यह धारा जिंदा रहेगी ? इस प्रश्न की गहराई में जाने के लिए स्पष्ट करना जरूरी है कि नियोगी धारा है क्या ?

मुख्य रूप से नियोगी एक ट्रेड यूनियन के नेता थे। लेकिन छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा (छमुमो) ट्रेड यूनियन नहीं है। नियोगी ने तो मोर्चे को एक नया मोड़ दिया। वे ट्रेड यूनियन जो चर्चित हैं, मुख्य रूप से संगठित मजदूरों की अधिक सुविधाओं की लड़ाई लड़ते हैं। उनके नेता बड़े लोग होते हैं। जो सुख-सुविधा की जिंदगी जीते हैं। उनके साथ माफिया और दलाल भी हो सकते हैं। उद्योगपतियों से भी उनकी साँठ-गाँठ हो सकती है। कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि पूरी व्यवस्था बदलने का कोई सपना उनके पास में हो, यह जरूरी नहीं। नियोगी ने मजदूरों के साथ पत्थर तोड़े, आदिवासियों के बीच रहकर जंगल से लकड़ी काटी, मछली पकड़कर जिंदगी जी, भेड़-बकरी चराई और आदिवासी महिला से शादी करके अंतिम आदमी की जिंदगी भोगी और उसे समझा। इसीलिए उनके मजदूर संगठन का आधार असंगठित मजदूर थे। इतना ही नहीं उनका संगठन इतना व्यापक था कि जिसमें मजदूरों के साथ किसान, खेत-मजूर, आदिवासी युवक और महिलाएँ भी जुड़ी थीं। छमुमो केवल आर्थिक सुविधाएँ दिलाने में संलग्न नहीं था। छमुमो भिड़ा था वैचारिक क्रांति में, उनके संघर्षों का लक्ष्य था एक समतामूलक समाज की पृष्ठभूमि बनाना। स्थापित ट्रेड यूनियनों और राजनीतिक नेताओं से टकराव का यही रहस्य है। उनकी हत्या के पीछे भी व्यवस्था की घबराहट है, जो बढ़ती हुई जन-जागृति को बर्दाश्त नहीं कर सकी। वर्तमान ट्रेड यूनियन और राजनीतिक दल स्थापित व्यवस्था के अंग बने गए हैं, चाहे वे कितने ही एक-दूसरे के विरोधी दिखाई देते हों। नियोगी का आंदोलन इस तथाकथित मुख्यधारा से एकदम भिन्न था।

छमुमो ने नियोगी से प्रेरणा लेकर स्कूल और अस्पताल खोले। ऐसे रचनात्मक काम तो और मजदूर संगठनों ने भी किए हैं, लेकिन मजदूरों की शराब छुड़ाने का ऐसा सफल प्रयोग और कोई संगठन देश में नहीं कर पाया है। इसकी भी भारी कीमत

संगठन ने चुकाई है। शराब के ठेकेदारों ने कार्यकर्ताओं पर प्राणघातक हमले किये थे, तथा नियोगी को भी मार डालने की धमकियाँ दी थी। केवल आर्थिक सुविधाएँ मजदूरों को दिलाना उनका उद्देश्य नहीं था, वे मजदूरों को सामाजिक क्रांति की ओर बढ़ा रहे थे।

"किसी चाँदनी रात में घोड़े पर बैठकर सरदार आएगा और लोगों को मुक्त करेगा।" यह किवदंती अनेक ने छत्तीसगढ़ में सुनी थी, लेकिन इस किंवदंती के अंदर एक ऐतिहासिक और गौरवपूर्ण इतिहास छिपा था, इसे समझने और उजागर करने का काम नियोगी जैसा व्यापक सोच वाला व्यक्तित्व ही कर सकता था। यह शूरवीर आदिवासी नेता वीर नारायणसिंह था, जिसने अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया था। सन् 1857 के 19 दिसंबर को अंग्रेजों ने उसे फाँसी पर लटका दिया था।

यों तो मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने भी इस वीर की स्मृति में सरकारी समारोह आरंभ किए, लेकिन 1978 में छमुमो को स्थापित करके तथा मजदूरों के साथ किसानों, आदिवासियों, महिलाओं और युवकों को जोड़कर छत्तीसगढ़ की पहचान को नियोगी ने जैसा निखारा और उसकी अस्मिता को बढ़ाने की कोशिश की वह किसी भी ट्रेड यूनियन और राजनीतिक दल से भिन्न है। उनकी निगाह से यह बात छूटी नहीं कि बिना महिलाओं के कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती। "महिला मुक्ति मोर्चा" ने न केवल जुझारू केडर दिया, बल्कि उसने आदमी और औरत के रिश्ते को भी बराबरी की ओर बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाई।

नियोगी के मस्तिष्क में देश बदलने का एक सपना था, इस सपने के लिए ही वे जी रहे थे और संघर्ष कर रहे थे। वे कहते थे कि वर्तमान देशद्रोही आधुनिकीकरण की व्यवस्था के स्थान पर देशप्रेमी आधुनिकीकरण की व्यवस्था को लाना होगा।

यही कारण था कि चाहे भोपाल गैस कांड के विरोध में मोर्चा हो या नर्मदा आंदोलन का मोर्चा हो, छमुमो हमेशा अग्रणी रहा है। नर्मदा के बड़े बाँधों का विरोध करते हुए जो "लांग मार्च" पिछले दिसंबर में बड़वानी से निकला था और गुजरात की सीमा फेरकुंआ पर जो एक माह का पड़ाव हुआ था, छमुमो का उसमें प्रमुख हाथ था। इस तरह वे वर्तमान वामपंथी नेताओं से एकदम भिन्न थे, जो बात तो समता की करते हैं, लेकिन ऐसी विकास की पद्धति की वकालत करते हैं जो पश्चिमी आधुनिकीकरण और उपभोक्ता एवं भोगवादी संस्कृति पर आधारित है।

नियोगी की तरह कितने ही ऐसे राजनेता हैं जो यह एहसास करते हैं कि एक देश में दो देश बन गए हैं, एक है भोगवादी आधुनिक देश और दूसरा है उसका आंतरिक उप निवेश। इस आंतरिक उपनिवेश की मुक्ति के लिए लड़ाइयाँ चल रही हैं और श्री नियोगी भी इन लड़ाइयों के एक प्रमुख सेनापति थे। वे नक्सलवादियों से भी इस माने में भिन्न थे कि उनका विश्वास गाँधीवादी अहिंसक तरीके में था। मृत्यु के पूर्व जो वसीयत वे रिकार्ड करा चुके थे, उसमें भी उन्होंने यही कहा था कि यद्यपि हथियारी-क्रांति की भी जरूरत हो

सकती है, लेकिन तभी जब सभी लोकतांत्रिक रास्ते समाप्त हो गए हों।

वसीयत से अधिक उनका कर्म और प्रशिक्षण बोलता है। कहा जाता है कि उनकी अर्थी पर आँसू बहाने और अपनी हमदर्दी प्रकट करने के लिए करीब दो लाख लोग मौजूद थे और जब पंद्रह दिन बाद रैली निकली तो उसमें भी करीब एक लाख लोग हाजिर थे। लोगों में गुस्सा तो स्वाभाविक है, लेकिन जो अनुशासन उन्होंने प्रदर्शित किया वह अनुकरणीय था। इन पंक्तियों के लिखने तक श्री नियोगी की मृत्यु को महीने भर से ज्यादा वक्त बीत चुका होगा। अपनी माँगों को लेकर हजारों की तादाद में जो लोग धरने और भूख-हड़ताल पर बैठे, इन पंक्तियों के छपने तक वे जेल भर चुके होंगे। स्थापित व्यवस्था के द्वारा उन्हें उत्तेजित भी किया जा रहा है। लेकिन जो संयम छमुमो और उससे जुड़े संगठनों ने प्रदर्शित किया है, वह संभव ही नहीं था, यदि श्री नियोगी से उन्हें ऐसा प्रशिक्षण न मिला होता।

नियोगी ऐसी धारा है जो व्यवस्था और सरकार की नजर में बहुत खतरनाक है। नियोगी का तो प्रभाव-क्षेत्र बड़ी तेजी से बढ़ रहा था। दल्ली-राजहरा से राजनाँदगाँव और राजनाँदगाँव से कांकेर और कांकेर से भिलाई के एक लाख मजदूर इसकी चपेट में आ गए थे। यह तो बहुत बड़ी ताकत है, लेकिन यदि चार लोग भी इस धारा के साथ जुड़ जाएँ तो व्यवस्था में तहलका मच जाता है।

धार जिले की कुक्षी तहसील में जन-जागृति के कामों में लगी हुई दो युवतियों (श्रद्धा, सुभद्रा) से सरकार इतनी घबरा गई कि कलेक्टर ने उन्हें मोटर में बिठाकर जिले से बाहर कर दिया। वे फिर कुक्षी पहुँची। एस. पी. ने उनके मकान-मालिक को पिटवाया और इन युवतियों को धौंस-दपट दी और कहा कि वे धार छोड़ दें। सर्वोदय मंडल के प्रमुख लोग जब मानव अधिकार के सवाल को लेकर आय. जी. पुलिस से मिले तो उन्होंने कोई भी मदद देने से इंकार कर दिया। आई. जी. और कलेक्टर दोनों ने कहा कि समाजसेवा की कोई जरूरत नहीं, यह एक धोखा है, फरेब है। आई. जी. का कहना था कि शहर में लड़ाई लड़ो, गाँव में लड़ाई लड़ोगे तो देश टूट जाएगा। सबसे अधिक घबराई हुई शायद म. प्र. की सरकार है। बाबा आमटे पर उसने कीचड़ उछाला। बड़वानी और आलीराजपुर में उसने घोड़े दौड़ाए। होशंगाबाद जिले में उसने गुंडों से आदिवासियों को पिटवाया।

असल में देश में दो धाराएँ हैं। दो देश हैं, इसलिए दो धाराएँ हैं। एक धारा वह जो मंदिर और मस्जिद का सवाल उठाती है। मंडल का प्रश्न उठाती हैं, केन्द्रीकृत व्यवस्था उनका लक्ष्य है। सारा हिमालय चाहे भूकंपित हो जाए। लोग तबाह हो जाएँ लेकिन ये बेशर्मी से कहते रहेंगे टिहरी तो बनेगा। ये शक्तियाँ एक-दूसरे की विरोधी बनकर लड़ाइयाँ भी लड़ती हैं, लोग मारे भी जाते हैं, गिरफ्तारियाँ भी होती हैं लेकिन कुर्सी पाने की लालसा एक ऐसी कड़ी है जो सबमें समान हैं। कुर्सी के लिए सभी

बहुरूपिया बनते हैं। भ्रष्ट व्यवस्था से सभी समझौता करते हैं। व्यवस्था को इनसे कोई खतरा नहीं क्योंकि वह अच्छी तरह जानती है कि उनकी लड़ाइयाँ नकली हैं। लोगों की बेहतरी से उनका कोई संबंध नहीं, व्यवस्था में परिवर्तन ये चाहती नहीं।

एक दूसरी धारा भी है जो न्यूनतम मजदूरी का सवाल उठाती है। बंधुआ मजदूर को आवाज देती है। सार्वजनिक भूमि पर औद्योगिक आक्रमण का विरोध करती है, मशीन के द्वारा बेदखल, बेजुबान लोगों के लिए लड़ती है, कुदरती संसाधन छीने जाने पर रोष प्रकट करती है। वह सवाल उठाती है कि कुछ लोगों की लिप्सा के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त हवा, पानी और जमीन को नष्ट और जहरीला बनाने का अधिकार उन्हें किसने दिया है ? किसकी कीमत पर किसका विकास इस प्रश्न को उछाल कर वह स्थापित व्यवस्था के ढोंग का पर्दाफाश करती है। जैसे-जैसे यह धारा फैलती है गाँवों से लेकर शहरों तक के ठेकेदारों, साहूकारों, भ्रष्ट अधिकारियों, उद्योगपतियों और भ्रष्ट राजनेताओं की चूलें हिलने लगती हैं। इसलिए 'भेड़िया आया-भेड़िया आया' की तर्ज पर नक्सलवाद का भूत खड़ा किया जाता है।

मुश्किल यह है कि दीवार पर अंकित लकीरों को पढ़ पाने की समझ स्थापित व्यवस्था में नहीं होती, इसलिए स्थापित व्यवस्था की गुलाम सरकारों को सिवाए दमन के और कुछ नहीं सूझता। स्वार्थ में अंधे होने के कारण सामाजिक और आर्थिक तब्दीली उनके वश में नहीं होती। इसलिए 'नियोगियों', की हत्या की जाती है। लेकिन नियोगी व्यक्ति नहीं ऐसी धारा है, जिस धारा में हजारों युवक और युवतियाँ खुद-ब-खुद शरीक होते जा रहे हैं। क्या इस धारा की भी वे हत्या कर सकेंगे ?

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 19-11-91

बंदूक, सत्ता को हमेशा बहुत प्रिय होती है लेकिन....

सरकारी आंकड़ें हैं कि भिलाई में हुए गोलीकांड में 18 लोग मारे गए जिनमें एक 12 वर्ष का लड़का और महिलाएं भी हैं। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक सभी मृतकों की शिनाख्त नहीं हो पाई थी। गैर सरकारी आंकड़ों के अनुसार मृतकों की संख्या 50 के करीब पहुंच चुकी है तथा 10-12 बच्चे लापता हैं, धरने में सैकड़ों महिलाएं भी थी, जो अपनी गोद में दूध पीते बच्चे लिए हुई थी। दुर्भाग्य से एक पुलिस सब-इंसपेक्टर की भी मृत्यु हो गई है।

प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुंदरलाल पटवा ने तत्काल न्यायिक जांच की घोषणा कर दी और वे इस कांड पर चुप्पी साधे हुए हैं, लेकिन उद्योगमंत्री श्री कैलाश जोशी ने कहा है कि 'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चे' (छमुमो) की हठधर्मिता के कारण यह घटना घटी। सारे देश में इस घटना पर प्रतिक्रियाएं हुई हैं। इस घटना की निंदा करते हुए संपादकीय लिखे गए हैं राजनीतिक दलों ने तीखी प्रतिक्रियाएं की हैं तथा ट्रेड यूनियनों एवं स्वयंसेवी संगठनों ने प्रदेश की सरकार पर बर्बरता के आरोप लगाए हैं। बाबा आमटे की पीड़ा उबल पड़ी है तथा उन्होंने भी इसे शर्मनाक घटना बताया है।

गोलीकांड के औचित्य के संबंध में तो न्यायिक आयोग गहराई में जाकर अपनी रपट देगा, ऐसी आशा की जाती है। यद्यपि देश के कई भागों से यह आवाज भी उठी है कि जांच उच्चतम न्यायालय के किसी जज से कराई जाए। नागरिक एवं मानव अधिकारों की आवाज उठाने वाले कई गैर सरकारी संगठन भिलाई पहुंच रहे हैं तथा जांच-कार्य में लगे हैं।

उपरोक्त गोलीकांड कोई आकस्मिक घटना नहीं है। पिछले 19 माह से एक जबरदस्त आंदोलन छत्तीसगढ़ के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र में चल रहा था। अपने विशिष्ट ट्रेड यूनियन आंदोलन के साथ छत्तीसगढ़ की अस्मिता को जोड़ देने के कारण संपूर्ण देश में प्रसिद्ध लाड़ले नेता नियोगी को मार डाला गया था। श्री नियोगी के न रहने पर भी आंदोलन थमा नहीं था। जिन तात्कालिक मांगों को लेकर श्री नियोगी शहीद हुए, वे अभी भी बनी हुई है। उद्योगपतियों का दबाव सरकार पर बना हुआ है, यहां तक कि नियोगी की मौत के मुख्य आरोपी चंद्रकांत शाह सरकारी हिरासत से फरार हो गए, जो अभी तक लापता है।

नियोगी की मृत्यु के बाद छमुमो लगातार समझौते की टेबल पर भाग लेता रहा है, लेकिन सरकार उद्योगपतियों को इस बात के लिए राजी नहीं कर सकी कि वे केंद्रीय श्रम नीति के अनुरूप रखी जा रही छमुमो की मांगों को पूरा करवा सके।

जिन तात्कालिक मांगों को लेकर फिलहाल आंदोलन चल रहा था, वे तीन थी।

एक यह कि उद्योगों से सेवा निवृत्त किए गए मजदूरों को वापस काम पर लिया जाए। दूसरे यह कि असंगठित मजदूरों को भी (ठेके पर काम कर रहे) श्रमनीति के अनुरूप ही जीने योग्य मजदूरी मिले तथा तीसरे यह कि नियोगी के हत्यारों को सजा दिलवाई जाए।

श्री नियोगी का बलिदान भी उपरोक्त प्रथम दो मांगों को स्वीकार नहीं करवा सका। नियोगी की हत्या के कारण तीसरी मांग जुड़ गई तथा इन्हें लेकर छमुमो पिछले 10 महीनों से लगातार जूझ रहा है। छमुमो ने अपनी जबर्दस्त ताकत का इजहार इन दिनो किया है। संगठन की विशेषता यह रही है कि इसके आंदोलन ने हमेशा धीरज से काम लिया, सत्याग्रह एवं अहिंसक तरीकों का इस्तेमाल किया और समझौते के लिए हमेशा तैयार रहे।

जिस दिन गोलीकांड हुआ, उस धरने में सैकड़ों महिलाएं अपने बच्चों को गोद में लिए हुए थी। श्री कैलाश जोशी ने जो बयान दिया है कम से कम उनसे ऐसी आशा नहीं थी। वे कहते हैं, लोग हेलमेट पहने थे और एम्बुलेंस लेकर आए थे, इससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि उनकी मंशा क्या थी। उनका इशारा यह है कि लोग हिंसा की तैयारी से आए थे। यह नहीं भूलना चाहिए कि गरीब लोगों में बलिदान की अपूर्व शक्ति होती है। निहत्थे लोग गोलियों के सामने सीना तान कर खड़े हो जाते हैं। यह सही है कि लोग बलिदान हो जाने का मन बनाकर आए थे, लेकिन मारने के इरादे से कदापि नहीं। नियोगी की यही सीख थी।

भाजपा के ही एक पूर्व सांसद श्री मोहन भैय्या जख्मी होकर अस्पताल में पड़े हैं तथा उन्होंने प्रशासन के खिलाफ अपनी नाराजी जाहिर की है।

छमुमो की यह पीड़ा कि सरकार आश्वासन का नाटक करती रहती है और कुछ करती नहीं, अपनी सीमा पार कर गई, तो उसने भिलाई में 5 लाख लोगों को इकट्ठा करके सत्याग्रह करने की योजना बनाई। साइकिलों के दल गाँवों में निकल पड़े। पैदल यात्री छमुमो का संदेश लेकर, युवक और महिलाएं बिगुल बजाते हुए घर से बाहर हो गई। सांस्कृतिक टोलियाँ अपने गीत और नाटक लेकर घर-घर को जगाने मैदान में आ गई, नतीजा यह हुआ कि भिलाई के इर्द-गिर्द, दूर-दूर तक के हिस्सों में एक जबर्दस्त हलचल मच गई। मई के अंतिम सप्ताह में हजारों की टोलियां भिलाई आना शुरू हो गई। सरकार के कान खड़खड़ाए।

श्री कैलाश जोशी ने इस स्थिति को टालने की कोशिश की और छमुमो को संदेश भेजकर वार्ता के लिए आमंत्रित किया। छमुमो ने वार्ता में भाग लेना स्वीकार किया, यद्यपि पिछले 4-6 महीनों से चल रही चर्चाओं का कोई नतीजा नहीं निकला था। लोगों को अपने-अपने गांवों में वापस भेजा गया, लेकिन प्रतीक स्वरूप 5-6 हजार लोगों का धरना उस समय तक कायम रखा गया, जब तक कि वार्ता चली। एक माह तक वार्ता चलती रही तब भी सरकार मजदूरों के संतोषजनक हल निकलवाने में कामयाब नहीं

हुई, जब सरकार के विश्वास पर एक विशाल सत्याग्रह स्थगित किया था, तब क्या उसकी नैतिक जवाबदारी नहीं थी कि वह किसी भी कीमत पर मजदूरों को विश्वास में लेती ? बातचीत टूट जाने पर असंतोष और क्षोभ की लहर फैल जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी। क्या कोई भी जिम्मेदार सरकार धरनों और सत्याग्रहों से निबटने के लिए पुलिस की बर्बर गोलीबारी का सहारा लेगी ?

उपरोक्त मुक्ति मोर्चे का आंदोलन केवल मजदूरों की मांग तक ही सीमित नहीं है। मुख्य रूप से इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में भिलाई, उरला, टेडेसरा और कुम्हारी के असंगठित मजदूरों का हाथ है, लेकिन यह आंदोलन छत्तीसगढ़ के किसानों युवकों, महिलाओं और भूमिहीनों में फैल गया है। छत्तीसगढ़ में अपार खनिज संपदा है, यहां लोहा, पत्थर, कोयला, चूना, बाक्साइड, लाइमस्टोन, डोलामाइट, अभ्रक, प्यूराइट, जस्ता, तांबा, कोरडम और यूरेनियम तथा कांच बनाने का कच्चा माल भरपूर मात्रा में है। यह क्षेत्र वन संपदा से परिपूर्ण है। यहां शिवनाथ अरपा, महानदी, पैकी, खारून और इंद्रावती नदियां भरपूर बहती हैं, लेकिन फिर भी छत्तीसगढ़ प्यासा है, रोजगार घटते जा रहे हैं और शोषण बढ़ता जा रहा है।

1856 में इस धरती पर वीर नारायणसिंह हुए थे, जिन्होंने भुखमरी के दौरान साहूकारों के शोषण का मुकाबला किया था और अंग्रेजों की बंदूक से शहीद हुए थे। लोग कहते हैं कि 100 वर्ष के बाद शंकर गुहा नियोगी पैदा हुआ जिसने उन्हें मुक्ति का रास्ता दिखाया, और वह भी शहीद हुआ। स्वर्गीय शंकर गुहा नियोगी के साथ हजारों हजार लोगों ने एक नए शोषण-विहीन छत्तीसगढ़ का सपना संजोया है। जिसने मुक्ति मोर्चे का आंदोलन नहीं देखा है, वह कल्पना नहीं कर सकता कि नियोगी ने लोगों के दिलों में कैसा स्थान बनाया है। यह सही है कि नियोगी व्यक्ति नहीं, एक धारा है। इसलिए मुक्ति मोर्चा केवल ट्रेड यूनियन नहीं है, वह एक सपना है, जो जीवन बदल रहा है। इसलिए यह आंदोलन शराब बंदी से जुड़ा है, शहीद अस्पताल खोलता है, स्कूल चलाता है, लोककला सांस्कृतिक मंच बनाता है। इसका महिला मुक्ति मोर्चा बराबरी की लड़ाई लड़ता है, संगठन पर्यावरण की बात उठाता है। इसलिए तो हुक्मरान घबराए हुए हैं। घबराहट में सत्ताधीश बंदूक पकड़ता है और इतिहास भूल जाता है, लेकिन क्या इतिहास भूल जाने से वर्तमान की नियति बदल जाएगी ?

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 9-7-1992

भुखमरी के आलम में प्रेरणा का एक शिविर

रात के दो बज चुके थे। आदिवासी लड़के और लड़कियां नाच रहे थे, छोटी-छोटी डंडियों पर, जो वे आसपास से ही काट लाये थे और ढोलक की थाप पर उनकी धीमी लोकराग पर झूमते हुए गा रहे थे- बापी करे मूला तो मति जाओ हाहरे, (सासरे) हाहरे जाओगा थारो हाहरो देगा दखा (दुःख), घर में परणावे तो दौड़ी जाओ हाहारे, बापो करे मूला तो .....।

दहेज की अन्यायी प्रथा के विरोध में खड़े होने की प्रेरणा देते हुए युवक जब युवतियों को आग्रह कर रहे थे कि तुम्हारा बाप यदि तुम्हारा (मूला) मोल करे तो तुम ससुराल मत जाना, लेकिन घर में शादी करे अर्थात मोल नहीं करें तो दौड़ी हुई चले जाना। तब मुझे भी स्फुरण होना स्वाभाविक था, लेकिन उस समय तक मुझे नहीं मालूम था कि यह गीत तथाकथित क्रांतिकारी शहरी गीतों जैसा नहीं था जो सभास्थल के बाद ही भुला दिया जाता है। उससे अधिक ही था। वहां बैठे हुए बुजुर्गो ने सचमुच कोई संकल्प ले लिया था जिसका सबूत मुझे दूसरे दिन की सभा में मिला जब 38 मुख्य लोगों ने जिनमें पंच, तड़वी आदि थे यह संकल्प दोहराया कि वे अपनी लड़की की शादी में लड़के वाले से दहेज नहीं लेंगे और न दूसरों को लेने देंगे। हमारी परम्परा के ठीक विपरीत भीलों में यह परम्परा प्रचलित है कि लड़के वाला दहेज देता है। इस प्रथा के रहते मजबूर होकर उन्हें बाजना तहसील में डेढ़ हजार से दो ढाई हजार तक के चांदी के गहने देना पड़ते हैं जो वे साहूकार से उधार लाते हैं। इस तहसील में अनेक साहूकार 10 रु सैकड़ा प्रतिमाह ब्याज ले रहे हैं। इसी के साथ इन लोगों ने यह भी संकल्प लिया कि वे शराब नहीं पिऐंगे।

मध्यप्रदेश एवं राजस्थान की सीमा पर बसे ग्राम ठीकरिया में जहां सड़क नहीं है इसलिए कोई मोटर नहीं जाती। यहाँ करीब 300 लोगों का एक शिविर लगा जिसमें भारतीय लोकदल के कार्यकर्ताओं के अलावा पंच, सरपंच तथा अन्य ग्राम के मुखिया उपस्थित थे। राजस्थान क्षेत्र के तथा मयोर नामक प्रत्येक क्षेत्र की सात पंचायतें तथा बाजना क्षेत्र की 14 पंचायतें इस तरह कुल 28 पंचायतों के लोग यहां जमा थे। जयप्रकाश के नेतृत्व में मध्यप्रदेश के गांव-गांव में जन आंदोलन को फैलाने की दृष्टि से प्रत्येक पंचायत से एक मुखिया को दो सप्ताह के अन्दर-अन्दर उसकी पंचायत में जनसंघर्ष समिति बना लेने का कार्य सौंपा गया।

इसी शिविर को संबोधित करते हुए मामा बालेश्वरदयाल ने देश की वर्तमान लड़ाई की महाभारत की लड़ाई से तुलना करते हुए बड़े सटीक ढ़ंग से भीलों के गले उतारा कि एक ग्वाल के लड़के ने पाण्डवों को रणकौशल सिखाया जिसके बिना वे कौरवों

को परास्त करने में असमर्थ रहते। अश्वत्थामा नामक हाथी को मारकर द्रोणाचार्य को भ्रमित करना कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया है और इस तरह हथियार डलवाना, शाम हो जाने का भ्रम पैदा कर अर्जुन को जयद्रथ के वध में चालाकी से सहायता करना आदि उदाहरणों को बड़े मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बतलाया कि ग्वाल के लड़के ने किस तरह बड़े-बड़े शूरवीर और नीतिशास्त्रियों को लड़ाई का ढंग सिखाया। इस तरह आदिवासियों ने हीनता के भाव को समाप्त करने का प्रयास करते-करते उनकी मुख मुद्रा बड़ी गंभीर हो गई, जब उन्होंने कहा कि दो तीन साल में इस देश में कोई बड़ा उथल-पुतल होने वाला है और शायद अपनी 70 वर्ष की उम्र का अहसास करते हुए नम्रतापूर्वक बोले कि मैं तो तुम्हारा चौकीदार हूँ और इस नाते भविष्य की चेतावनी दे रहा हूँ। इसके आगे कुछ नहीं कर सकता। साथ ही लड़ाई के कौशल पर चर्चा करते-करते जैसे उन्हें यह भी भास हो गया था कि मेरे जैसे लोग भी श्रोताओं में हैं तो युद्ध का दर्शन निरूपित करते हुए उन्होंने कहा कि यह लड़ाई अब केवल कुराज्य और सुराज्य की नहीं रही है। यह तो अब धर्मयुद्ध हो गई है। चूंकि अब लड़ाई स्वराज्य और परराज्य की हो गई है, राज्य की स्वतंत्रता पर ही अब प्रश्न-चिन्ह लग गया है। क्या हम फिर किसी के गुलाम तो नहीं हो जावेंगे ?

चारों और विन्ध्याचल की पहाड़ियों से घिरा बाजना का यह इलाका पहाड़ी है जिसमें गजब की दुरंगी जमीन मिलती है। एक टुकड़ा काली जमीन का तो दूसरा टुकड़ा लाल जमीन का है। काली जमनी पर कपास बहुत अच्छा हो जाता है। भोजपुर पंचायत के सरपंच श्री औंकार ने बतलाया कि अनेक लोग तो बेचारे मुफलिसी के कारण बीज ही प्राप्त नहीं कर सके, कपास कहां से होता जिन्होंने बोया वे भाग्यशाली रहे। दस पांच फीसदी गेहूं अथवा चना थोड़ा-सा बो लेते हैं बाकी तो स्यालू फसल पर ही निर्भर करते हैं, जो इस वर्ष सूखे के कारण नष्ट हो गई और पिछले वर्ष अतिवृष्टि के कारण नष्ट हो गई थी। यही दशा पिछले चार-छः वर्षों से चल रही है। नतीजा यह हुआ है कि लोगों की बकरियां ओर बैल तक बिक गये हैं। इस इलाके में साधारणतया 15-20 से 30-35 तक बकरियां प्रत्येक घर में रहती थी आज मुश्किल से एक दो बकरी बची हैं।

इस इलाके के ये भील अपने को उजले मीणा भील कहते हैं। रतलाम तथा आसपास बसे भीलों को ये काली मीणा कहते हैं तथा इनसे इनका रोटी तथा बेटी व्यवहार भी नहीं है। झाबुआ, अलीराजपुर, जोबट के भीलों से भी नहीं, जिन्हें यह लंगोटिया कहते है। होली पर भगोरिया नहीं होता, लेकिन लड़के-लड़कियों के सामूहिक नृत्य होते हैं। जहां तक सरकार के खिलाफ लड़ने का सवाल है सभी भीलों में एकरूपता तथा एक ही जाति दिखाई देती है।

यों यह शिविर कुछ लोगों तक ही सीमित था जो निमंत्रित थे, लेकिन सामान्य आदिवासी भी मामाजी के आगमन का सुनकर आ गये थे। विशेषतः महिलाएं।

बिल्कुल नये कड़क पीले अथवा लालरंग के छीट के लुगड़े से अपने चेहरों को छिपाये हुए महिलाओं को देखकर आसानी से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कस्बे की सभ्यता का प्रभाव कितनी गहराई तक हुआ है। शिविर की समाप्ति पर जिस श्रद्धा से लोगों ने मामाजी को नमन किया तथा औरतों ने पत्रम् पुष्पम् भेंट दी उस पर मैं सोचता रहा कि एक तरफ सरकार है जो अनुदान आदि के करोड़ों रुपये खर्च करके तथा बड़ी भारी वैतनिक फौज खड़ी करके भी आदिवासियों को कोई विश्वास प्राप्त नहीं कर सकी। दूसरी तरफ एक साधनहीन व्यक्ति है। जिसके पास हर आदिवासी मर्द-औरत अपने दुःख दर्द में इस तरह दौड़ता हुआ आता है जैसे कोई देवी-देवता का मंदिर हो। खोरावाला नाला पर नीम का दतौन कर रहा था कि कुछ बच्चों को नाले के समीप एक झिरी से पानी ले जाते हुए देखा। सोचा यह गांव कितना खुशनसीब है कि नजदीक ही पानी मिल जाता है, अन्यथा कई जगह मीलों जाना पड़ता है। दूसरी खुशनसीबी यह है कि यह नाला "जीवता" नाला है अर्थात् बारहों महीने बहता रहता है। लेकिन बदकिस्मती यह है कि 10-12 वर्ष पूर्व भभरिया नाका पर मलिक कलेक्टर के जमाने में बांध बनाये जाने के लिये जांच पड़ताल हुई थी। हर साल पंचायत प्रस्ताव पास करके भेजती है लेकिन कोई उत्तर नहीं। 'रिसन' की जांच के लिये गड्ढे खोदे जाते हैं जो अभी तक नहीं खोदे गये हैं। इससे यह साबित होता है कि शासन ने अभी तक वह आधार ही नहीं बनाया है कि जिस पर वह हाँ या ना का निर्णय ले सके।

बहरहाल इस इलाके के लोग इसी सपने को संजोये जी रहे हैं कि किसी दिन बांध बंधेगा और इसी तहसील के शिवगढ़ क्षेत्र की तरह वे भी अपने खेतों पर दो फसल उगा सकेंगे। मोटा अनुमान हैं कि खोरा, ठीकरिया, भंडारिया, आदि गांवों की तथा पंप लगाने देने पर भूरी घाटी के भी लोगों की कम से कम 500-600 एकड़ जमीन को बहुत आसानी से तथा कम खर्च में पानी मिल सकेगा। क्या शीघ्र ही ऐसी सरकार आ सकेगी जो खेत को पानी पिलाने को अपनी जवाबदारियों में सर्वप्रथम समझे ? क्या लोग इस बात को गहराई से समझेंगे कि किसान सबके लिये अनाज पैदा करता हैं। किसी भी लोक कल्याणकारी सरकार का यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह गरीब किसानों के लिये मुफ्त पानी का प्रबन्ध करें।

साभार - स्वदेश, 11-4-75

बनखेड़ी कांड से उठे कुछ बुनियादी सवाल

होशंगाबाद जिले के सुदूर पूर्वी अंचल में स्थित बनखेड़ी ब्लॉक में घटी जो घटनाएँ प्रकाश में आई हैं, उन्हें केवल 'कानून और व्यवस्था' या मान-सम्मान की ही दृष्टि से देखना खतरनाक होगा। इन घटनाओं के पीछे गहरे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलू हैं। ये पहलू बनखेड़ी तक ही सीमित नहीं हैं, इनका संबंध उन बुनियादी सवालों से है जिन पर इस देश का भावी अस्तित्व टिका हुआ है। इसे समझना जरूरी है, क्योंकि देश में बढ़ रहे तनाव और फैलती हुई हिंसात्मक ज्वालाओं के प्रति केवल चिंता प्रकट करना नकारात्मक कदम है। हिंसा और अविश्वास पैदा होने के कड़वे कारणों को स्वीकार करने की बजाए सत्ता में बैठे तथा आराम की जिंदगी बिताने वाले दमन का समर्थन करते हैं। नतीजा यह होता है कि बंदूक और पशुबल तात्कालिक इलाज उलटकर उन पर वार ही नहीं करता, लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को भी छिन्न-भिन्न भी कर देता है। होशंगाबाद की दुःखद घटना इसी की मिसाल है।

बनखेड़ी में पिछले ९ सितंबर को एक दर्दनाक घटना घटी जिसमें पुलिस एवं वनकर्मियों के जवानों द्वारा गाँव के लोग बुरी तरह पिटे। भीड़ में दूध पीते बच्चे लिए हुए महिलाएँ भी थी। 'किसान मजदूर संगठन' के नेता श्री हरगोविन्द के अलावा अनेक महिलाओं और पुरुषों को गहरी चोटें लगी, विद्यार्थी संगठन के प्रमुख श्रीगोपाल गांगुड़ा को रीढ़ की हड्डी में खतरनाक चोट लगी तथा शिवराज के शरीर में कई स्थानों पर फ्रेक्चर हो गया। इसी दौरान पुलिस के एक सब-इंस्पेक्टर श्री मिश्रा को भी चोटें लगीं, कहा जाता है कि कुछ अन्य जवानों को भी चोटें लगी हैं। सरकारी अधिकारियों का कहना है कि भीड़ ने पत्थर चलाए, इसलिए मजबूरन लाठी चार्ज करना पड़ा, लेकिन प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि बिना चेतावनी के बेरहमी से लाठियों और बंदूक के कुन्दों से लोगों को पीटा गया। यही नहीं, महिलाओं की भी पिटाई की गई, तब आत्मरक्षा में पत्थर चले।

इस पूरी घटना की विशेष बात यह है कि बनखेड़ी की एक गैर-सरकारी टुकड़ी ने सरकारी कर्मचारियों के साथ मिलकर गाँववालों तथा महिलाओं एवं आदिवासियों की पिटाई की। उनका कहना है कि सरकारी कर्मचारी पिट रहे थे यह बात लोगों को सहन नहीं हुई, इसलिए उन्होंने पुलिस एवं वनकर्मियों का साथ दिया। कहा जाता है कि ये लोग लालपट्टी बाँधे हुए थे तथा उनमें से अधिकांश बजरंग दल के थे। सरकार ने इस दौरान दो दर्जन से अधिक लोगों को हिरासत में लिया है, जिनमें महिलाएँ तथा अधिकांश आदिवासी हैं। ध्यान देने की बात यह है कि लालपट्टी लगाए नागरिकों में से एक को भी गिरफ्तार नहीं किया गया है। इन पंक्तियों के लिखते समय करीब दो सप्ताह पूरे होने

जा रहे हैं, लेकिन अभी तक कलेक्टर, कमिश्नर या विधायक महोदय ने लोगों की कोई खैर- खबर नहीं ली है।

लेखक स्वामी अग्निवेश तथा कॉ. शंकर गुहानियोगी के साथ पीड़ित इलाके में घूमा था। भय और आतंक अभी भी छाया हुआ है, लेकिन लोगों में दमन के खिलाफ भारी गुस्सा है। 20-21 वर्ष की चार युवतियों के साथ सरकारी कर्मचारियों ने बलात्कार किया, इसकी रोषभरी चर्चा है। ये युवतियाँ सिर पर गठ्ठा बाँधकर जलाऊ लकड़ी ले जा रहीं थीं जो कानून के अंतर्गत है। सरकार बड़े-बड़े लकड़ी चोरों को तो संरक्षण देती है, लेकिन गरीब लोगों की झोपड़ियाँ तहस-नहस कर देती है और हल-बक्खर भी जबरन ले जाती है। ज्ञात हुआ कि बिजनहाई गाँव में वनकर्मियों ने भारी उत्पात मचाया, झोपड़े तोड़ डाले तथा जो भी सामान मिला लूट ले गए। ऊपर उल्लिखित चारों युवतियाँ भी इसी गाँव की थीं। इन घटनाओं के तीन दिन बाद ही बनखेड़ी वाली घटना घटी।

9 सितंबर की घटना के तत्काल बाद नागरिकों की एक समिति घटनास्थल पर गई तथा वह अपनी जाँच के दौरान प्रभावित लोगों से मिली। इस समिति में पूर्व विधायक विनयकुमार दीवान, शंभुनाथ गुप्ता एवं योगेश दीवान थे जो क्रमशः कांग्रेस, जनता दल एवं कम्युनिस्ट पार्टी के जाने-माने चेहरे हैं। उनकी रपट कहती है कि जिला प्रशासन एक-पक्षीय कार्रवाई कर रहा है तथा निहित स्वार्थ का रक्षक बना हुआ है। रपट का निष्कर्ष है कि न केवल रेंज ऑफिस के समक्ष गरीबों को पीटा गया, बल्कि दो-एक फर्लांग दूर शांत बैठे हुए लोगों को भी घेरकर पीटा। इतना ही नहीं वे 6-7 कि.मी. दूर पलिया-पिपरिया गांव में भी गए और वहाँ भी उन्होंने पिटाई की। रपट में न्यायिक जाँच की माँग की गई है। अग्निवेश और शंकर गुहानियोगी ने भी प्रभावित इलाकों में लोगों से मिलने के बाद उपरोक्त की पुष्टि एक आमसभा में की। 9 सितंबर के दमन के विरोध में 10 सितंबर को पिपरिया बंद रहा, तो कर्मचारियों ने भी 12 को बंद का ऐलान किया और रैली निकाली जिसमें एस. डी. एम. स्वयं आगे चल रहे थे।

होशंगाबाद जिला राजनीतिक रूप से अन्य कई जिलों से भिन्न है। यह जिला समाजवादी आंदोलन का भी केन्द्र रहा है तथा समाजवादी हरिविष्णु कामथ को संसद में भेजने का काम इस जिले ने किया है। कुछ समर्पित युवक और युवतियों ने 70 के दशक में यहाँ बनखेड़ी में एक स्वयंसेवी संगठन, 'किशोर भारती' खड़ा किया जिसने कृषि के क्षेत्र में तो अनुकरणीय काम किया ही, लेकिन इसके द्वारा घोषित शिक्षा की नई पद्धति जो 'होशंगाबाद विज्ञान' के नाम से जानी जाती है, अंतरराष्ट्रीय पटल पर भी चर्चित रही। अब उसे पूरे मध्यप्रदेश में लागू करने की योजना सरकारी दफ्तरों में चल रही है। जिस 'किसान मजदूर संगठन' से आज सरकार का संघर्ष चल रहा है, उसे किशोर भारती ने ही अपने जनसहभागिता के कार्यक्रम के अंतर्गत प्रोत्साहित किया था।

'किसान मजदूर संगठन' के अलावा दो और जागरूक संगठन इस जिले के पूर्वी

इलाके में काम कर रहे हैं। एक 'समता संगठन' और दूसरा 'किसान आदिवासी संगठन'। इसके अलावा अन्य संगठनों में 'स्टूडेंट आर्गेनाइजेशन' उल्लेखनीय है।

इस इलाके में पीने के पानी और सिंचाई के लिए आवश्यक पानी के अलावा तवा बाँध परियोजना, इटारसी की आर्डिनेंस फैक्टरी एवं सेना के परीक्षण केन्द्र के कारण विस्थापित लोगों की विकट समस्या रही है। गरीबी का इस क्षेत्र में यह आलम है कि लोग अपनी जान जोखिम में डालकर फूटे बमों से पीतल और ताँबा लूटने दौड़ते हैं, जिसकी चर्चा देशभर में हुई है। ठेकेदारों, मालगुजारों और अफसरों का एक जबरदस्त गठबंधन यहाँ सक्रिय है, जिसे कमोबेश सभी राजनीतिक दलों का संरक्षण प्राप्त है। यद्यपि कुछ राजनेता इसके अपवाद भी हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है।

जिन संगठनों का ऊपर जिक्र किया गया है उनमें गजब के समर्पित युवक काम कर रहे हैं। उन्होंने गत दिनों पीने के पानी, सिंचाई और विस्थापन को लेकर जबर्दस्त आंदोलन चलाया। इसके तहत लोग पैदल-मार्च करते हुए भोपाल पहुँचे थे। कुर्सीखापा, जुन्हेटा और बुधनी में आदिवासियों, महिलाओं और गरीबों पर अमानुषिक अत्याचार हुए। यहाँ तक कि लोगों को उलटा लटकाकर पीटा गया और नाखून खींचकर निकाले गये। बुधनीकांड तो सरकार के पागलपन का ज्वलंत उदाहरण है। एक पुलिस जवान को मार डालने के आरोप में गाँव पर कहर बरषा, जबकि बाद में वह पुलिस जवान जिंदा पाया गया। इन सब कांडों को इन्हीं संगठनों ने उठाया। भ्रष्टाचार के विरुद्ध चले आंदोलन के दौरान संगठनों ने उन अधिकारियों से रिश्वत की रकम वापस करवाई जो वे ले चुके थे। संगठन ने खुद बड़े-बड़े लकड़ी चोरों की चोरियों का पंचनामा करवाया तथा दंड दिए जाने की आवाज उठाई। बनखेड़ी में नाई द्वारा हरिजनों के बाल नहीं काटे जाते थे। होटलों में उन्हें चाय भी नहीं पिलाई जाती थी। संगठन द्वारा पिछले चार-पाँच माह पूर्व ही इस छुआछूत और भेदभाव की नीति के खिलाफ संघर्ष छेड़ा गया था। सांप्रदायिकता के खिलाफ भी 2 अक्टूबर को एक प्रभावशाली रैली निकाली गई थी। सरकार तथा अन्य सत्तानशीनि गैर-सरकारी लोगों द्वारा सबसे बड़ा आरोप इन संगठनों पर यह लगाया जा रहा है कि वे लकड़ी चोरों को पनाह देते हैं। सरकार के पास इस बात का कोई जवाब नही है कि बड़े किसान, मालगुजार, ठेकेदार और बड़े अफसर खुलेआम चोरी करते हैं या करवाते हैं तो वे कभी पकड़ में क्यों नहीं आते ? हमेशा गरीब ही क्यों पकड़ा जाता है ? दूसरे रिश्वत दे देने पर चोरी जायज कैसे हो जाती है ? तीसरे चोरी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई सरकार करे लेकिन यह हक सरकारी कर्मचारियों को किसने दिया है कि वे अमानुषिक कृत्य करें ? एक तरफ वे लोग हैं, जो अपने पशुओं के लिए चारे और स्वयं के रहन-सहन व रोटी के लिए पूरी तरह जंगल पर आश्रित हैं, ये किसी समय जंगल के मालिक थे। दूसरी तरफ वे लोग हैं जो अंग्रेजी काल से ही धीरे-धीरे जंगलों पर काबिज हुए हैं और उन्होंने असली मालिकों को बाहर खदेड़ दिया है। ये जो

बाद के मालिक हैं इनके लिए जंगल के साधन जीवन-मरण के साधन नहीं हैं। इनके लिए जंगल ऐशोआराम और व्यापार की वस्तु है। जो इस काम के लिए जंगल को नष्ट कर रहे हैं वे संभ्रांत नागरिक बने हुए हैं और जो जिंदा रहने के लिए लकड़ी ले आते हैं वे लकड़ी चोर गिने जाते हैं।

क्या किसी सरकार में ऐसी हिम्मत है कि वह इस देशव्यापी अन्याय को समाप्त करे ? सरकार ने लाठी पहले चलाई या पत्थर पहले फिंके, इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण सवाल यह है कि जंगल की रक्षा कैसे होगी ? केन्द्रीय सरकार खुद इस नतीजे पर पहुँची है कि बिना जंगल के रहवासियों की सहभागिता के इसकी रक्षा नहीं हो सकती। इस बात को उसने अपनी राष्ट्रीय वननीति में व्यक्त भी किया है, लेकिन सरकारी कदम उल्टी दिशा की ओर जा रहे हैं।

दूसरे, यह कहा जा रहा है कि बनखेड़ी की जनता इन संगठनों के खिलाफ है। जनता के नाम पर जो लोग बात कर रहे हैं, उनके बारे में गरीबों की राय है कि वे दलाल और गुण्डे हैं। क्या सरकार इसकी जाँच करेगी ? जो भी हो एक बात बहुत स्पष्ट दिखाई देती है कि संगठन ने हरिजनों के सम्मान और बराबरी का गौरव दिलाने के लिए जो आंदोलन किया था उसकी खीझ बड़े और आसूदा लोगों में है तथा वे इसी ताक में थे कि वे कब संगठन के लोगों के हाथ-पैर तोड़ें और ऐसा आतंक फैलाएँ कि वे मानसिक रूप से टूट जाएँ। डॉ. आंबेडकर, लोहिया, जयप्रकाश, भगतसिंह और गाँधी के विचारों को लेकर अनेक जागृतिमूलक कार्यक्रम इस क्षेत्र में चलाए जा रहे हैं।

इन संगठनों की गतिविधियों के कारण एक जागृति की लहर इस इलाके में फैली है। सबसे कमजोर वर्गों में अपने हक का अहसास जगा है, इससे सभी राजनीतिक दलों का शीर्ष नेतृत्व घबरा रहा है। कमोबेश उनका संबंध भ्रष्ट अफसरों एवं दलालों से रहा है और वे सब एकजुट होकर इन संगठनों का विरोध करते थे, लेकिन अब उनमें भी परिवर्तन आया है।

भाजपा की सरकार ने यदि इस बढ़ती हुई शक्ति को नहीं पहचाना और दलीय चश्मे से ही सारी घटना देखती रही तो दलित आदिवासी और पिछड़ों की हाय उसे महँगी पड़ सकती है।

बनखेड़ी की घटना के पीछे एक और ताना-बाना है जिसे समझना जरूरी है। 'किशोर भारती' ने जो जमीन करीब 100 लोगों को खेती करने के लिए दी थी, उसके पीछे यह समझ थी कि सरकार से उनको पट्टे दिलवाए जाएँगे। 'किशोर भारती' ने अपने कार्यक्रमों को समाप्त करके जमीन वापस सरकार को सौंप दी है। लोगों में यह भय व्याप्त है कि उन्हें बेदखल कर दिया जाएगा, जिस तरह चुन-चुनकर लोगों को पीटा गया है, उससे उनके मन में बसा डर और साफ हो गया है।

जंगल विभाग जंगल बचाने में असमर्थ है यह बात अब सभी को समझ में आ

रही है। वे ही जंगल बचा सकते हैं, जिनका जीवन-आधार ही जंगल हैं। जब वे जंगल के अधिपति होंगे तब पंचायत नीति चलेगी और वे अपने पैरों पर कुल्हाड़ी नहीं मारेंगे, इस संबंध में एक सकारात्मक प्रयोग 'किशोर भारती' संस्था में हुआ था। करीब 30 एकड़ में गाँववालों ने सरकारी आधार पर बाँस, शीशम, नींबू, अमरुद आदि के पेड़ लगाए थे, 'किशोर भारती' और किसान मजदूर संगठन इसका प्रबंध करते थे, इसकी उपज संगठन के लोगों को बेची जाती थी तथा लाभ पैदावार बढ़ाने में खर्च किया जाता था। 'किशोर भारती' के बंद होने के बाद मजदूर संगठन ही इसका संचालन करता था। अपनी आवश्यकता के अनुरूप जंगल लगाने और सहकारिता के आधार पर उसकी उपज को आपस में बाँटने और जंगल की सामूहिक रक्षा करने का यह एक अद्वितीय उदाहरण है। सरकार के पास इतनी फुर्सत नहीं कि वह यह समझे कि राष्ट्रीय उत्थान में इस प्रयोग का क्या महत्व है ? शायद स्वार्थ ने उन्हें अंधा बना दिया है, राजनेता उनसे भी बड़े अंधे हैं जो हक की लड़ाई पर नक्सलवाद का शोर मचाते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को तोड़ते हैं और सहभागिता के प्रयोगों को कुचलकर नैराश्य का वातावरण पैदा करते हैं।

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 26-9-91

सिंहभूमि से बड़े बाँधों के विरोध की गर्जना

एक नाचता है और बाकी भीड़ होती है या तमाशबीन होते हैं, यह एक संस्कृति है। लेकिन एक-दूसरी संस्कृति है, जो मिटाई जा रही है। उसमें कोई दर्शक नहीं होता, तमाशबीन नहीं होता। सभी नाचते हैं, स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएं, युवक-युवतियां सभी। यह दूसरी संस्कृति जो विदेशी सभ्यताओं के आक्रमण के पूर्व हमरी मुख्य-धारा की अंग थी, अभी समाप्त नहीं हुई है। बड़े बांधों के विरोध में 10 व 11 सितंबर 88 को झारखंड के हृदय-स्थल सिंहभूम के चाईबासा में जब सम्मेलन समाप्त हुआ तो देर अधिक हो जाने के कारण सुदूर ग्रामीण अंचलों के आदिवासी चाईबासा में ही रूक गए थे। जयप्रकाश के विचारों से प्रेरित 'महिला संघर्ष वाहिनी' की सुश्री अमरजीत कौर का इशारा पाकर लवे स्वयंस्फूर्त नाचने और गाने लगे और वाहिनी ने किसी को भी दर्शक बने नहीं रहने दिया।

सिंहभूम को कोल्हान क्षेत्र के रूप में भी जाना जाता है। इस क्षेत्र ने अंग्रेजों के खिलाफ ऐतिहासिक संघर्ष किए हैं और अपने स्वयं के प्रशासन की सामाजिक व्यवस्थाएं जिंदा रखी जो 'मुण्डा', 'मानकी' प्रथाओं के नाम से जानी जाती हैं। आजादी के बाद भी जब इस प्रथा पर आक्रमण हुआ तो उन्होंने विद्रोह किया और अपनी लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्थाओं को बरकरार रखा। ऐसे क्षेत्र में सम्मेलन के दौरान जो निर्णय हुए हैं, उनका बड़े बांधों के खिलाफ चल रही लड़ाई में ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि इस क्षेत्र की संस्कृति में अपने हकों के लिए लड़ना एक स्वाभाविक प्रवृति है। सम्मेलन के दौरान पलामू के श्री मेघनाथ जब गा रहे थे-

'मौत की देहलीज पर,
गाते रहे हैं लोग'

तो यह गीत असंगत नहीं लग रहा था। साफ दिखाई दे रहा था कि यह गीत वही कह रहा था जो इस क्षेत्र का इतिहास कहता आया है या वह जो इस क्षेत्र के गंगाराम कलौंजिया जैसे लोग अपनी शहादत देकर कहते आए हैं।

सम्मेलन में लोगों ने तय किया कि हम उपरोक्त क्षेत्र में स्वर्णरेखा और खड़कई नदियों पर बन रहे बड़े बांधों को किसी भी कीमत पर बंधने नहीं देंगे। इसके लिए कार्यक्रम बनाते हुए मुख्य रूप से यह तय हुआ कि जो इन बांधों को समर्थन करेंगे उन्हें वोट नहीं मिलना चाहिए। गांव-गांव में सभाएं करके एक लाख हस्ताक्षर तथा एक लाख का अनाज या धन एकत्रित किया जाएगा। इसके अलावा चांडिल में जहां स्वर्णरेखा नदी पर बांध बन रहा है एक माह तक सिंचाई विभाग के समक्ष धरना दिया जाएगा। इन कार्यक्रमों के बाद जनवरी 89 में जिला मुख्यालय चाईबासा में एक विराट प्रदर्शन होगा

जिसमें बड़े बांध ही नहीं संपूर्ण विकास-पद्धति को ही बदलने का आग्रह होगा।

ज्ञातव्य है कि बड़े बांधों के विरोध में पिछली जुलाई के प्रथम सप्ताह में देश के जाने-पहचाने वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, पत्रकार, मैदानी कार्यकर्ता एवं पर्यावरण शास्त्री बाबा आमटे की कर्मस्थली आनन्द वन में एकत्रित हुए थे। अपने नाजुक स्वास्थ्य के बावजूद बाबा आमटे ने बड़े बांधों के विरोध का बीड़ा उठाया है। चाईबासा में हुआ उपर्युक्त सम्मेलन इसी की एक कड़ी था। जिसमें श्री मोहनकुमार ने केरल में बड़े बांधों के खिलाफ चल रहे संघर्ष का, श्री चन्द्रशेखर ने आंध्रप्रदेश के संघर्ष, श्री विकास आमटे ने महाराष्ट्र का और मेधा पाटकर एवं सतीनाथ षड़ंगी ने सरदार सरोवर एवं नर्मदा सागर बांध के विरोध में चल रहे संघर्ष का ब्यौरा दिया। मेधा ने पुनर्स्थापन की खोखली योजनाओं का जिक्र करते हुए बताया कि उनके क्षेत्र में एक एकड़ का मुआवजा कुल 46 रुपए ही मिला है। बिहार के भिन्न-भिन्न हिस्सों से आये कार्यकर्ताओं ने अन्य बड़े बांधों के विरोध में चल रहे संघर्षों का जिक्र किया।

सम्मेलन में हुई चर्चाओं का मुख्य मुद्दा यही था कि ये बांध सिंचाई के नाम पर बिजली के लिए बनाए जा रहे है, ताकि शहरी एवं औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। स्वर्णरेखा और खड़कई पर बनाए जा रहे बांधों का उदाहरण देते हुए आंकड़ों सहित यह बताया गया कि इससे मुख्य रूप से जमशेदपुर तथा टिस्को औद्योगिक संस्थान एवं शहरों को पीने के पानी का लाभ मिलेगा। कुल बजट का एक तिहाई हिस्सा केवल बड़े बांधों पर ही खर्च हो जाने से सिंचाई के तथा पानी के उचित प्रबंध के अन्य अधिक उपयोगी कार्यक्रम ठंडे बस्ते में पड़े रहते हैं। सभी वक्ताओं ने अपने-अपने संघर्षों का ब्यौरा देते हुए यही बतलाया कि 'राष्ट्रहित' और 'विकास' के नाम पर जिन लाखों लोगों की बलि दी जाती है, वे दर-दर ही भटकते रहते हैं और लाभ अन्य लोग उठाते हैं। सम्मेलन में कोल्हान क्षेत्र की स्वायत्त सभ्यता की चर्चा बार-बार चली और यह कहा गया कि ऐसे क्षेत्र में बिना लोगों की सहमति के बांध कैसे बन सकते हैं ?

स्वर्णरेखा एवं खड़कई नदी पर बन रहे बांध, बिजलीघर आदि को स्वर्णरेखा बहुउद्देशीय परियोजना का नाम दिया गया है। इसका प्रारंभ 1974 में हुआ था, जबकि इसकी लागत कुल 129 करोड़ ही थी। 81-82 में इसकी लागत 480 करोड़ हो गई और 94-95 तक जबकि इस बांध के पूर्ण होने का दावा किया जा रहा है इसकी लागत 1005 करोड़ तक पहुंच जाएगी। सरकार की ओर से यह दावा किया गया है कि इस योजना से बिहार, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल की 2.50 लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी तथा सिंहभूम जिले के कस्बों तथा शहरों एवं औद्योगिक संस्थानों की पानी की आवश्यकता की पूर्ति होगी। यह भी कहा गया है कि उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में आने वाली बाढ़ की रोकथाम होगी। केवल स्वर्णरेखा पर बन रहे बांध में ही 43,500 एकड़ जमीन से लोगों को बेदखल किया जाएगा तथा खड़कई पर बंध रहे बांध में

31,500 एकड़ जमीन डूब में आएगी तथा परियाजना से कुल मिलाकर 70,000 लोग विस्थापित होंगे।

उपर्युक्त सम्मेलन का आयोजन 'झारखंड मुक्ति आंदोलन', 'ईचा-खड़कई विस्थापित संघ', 'कोल्हान रक्षा संघ' एवं 'महिला संघर्ष वाहिनी' तथा 'लोकजागृति केन्द्र' ने संयुक्त रूप से किया था।

साभार -सर्वोदय प्रेस सर्विस

गंगा और नर्मदा : मां-बेटी दोनों ही संकट में है

गंगा की मुख्य स्त्रोत भागीरथी करीब २०० किलोमीटर की यात्रा करके पौराणिक शहर त्रिहरी 'टेहरी' पहुंचती है। इस शहर से १५ किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा-सा गांव है - सिराई। जो पहाड़ पर बसा हुआ है और उसकी तराई में जहां भागीरथी बहती है एक समतल मैदान है जिसे दोनों छोर के पहाड़ों, कलकल करती बहती भगीरथी तथा उसकी चमकीली रेत ने रमणीय और मनमोहक बना दिया है। हिमालय पर्वत की गोद में जाने कितने ऐसे रमणीय स्थल होंगे। यह रमणीयता यहां के वाशिंदों के लिए केवल आत्मिक ही नहीं है, भौतिक भी है। हवा, पानी, मिट्टी, पेड़ जो प्राकृतिक छटा के अंग है, उनके जीवनाधार भी हैं। गंगोत्री से नीचे जाते हुए लोगों से पूछिए "कहाँ जा रहे हो ?" वे कहते हैं - "गंगाघर" जा रहे हैं। गंगा उनकी मां है और उसके किनारे बने घर दूर गए बेटों की मां के घर हैं।

ऐसे अनगिनत घर डूब जाएंगे, करीब एक लाख लोग शरणार्थी बन जाएंगे चूंकि उ.प्र. की सरकार का यह फैसला है कि टेहरी बांध बनकर रहेगा। केन्द्र के ऊर्जामंत्री श्री आरिफ मोहम्मद खान और पर्यावरणमंत्री श्रीमती मेनका गांधी टेहरी परियोजना के बारे में चाहे विपरीत मत रखते हों, वैज्ञानिकों की रिपोर्टें चाहे जो कहें, योजना आयोग ने चाहे टेहरी परियोजना पर रकम खर्च करने पर रोक लगा दी हो तथा पर्यावरण विभाग ने अभी स्वीकृति न दी हो लेकिन टेहरी में विकास निगम की गाड़ियां दौड़ रही है, मशीनें चल रही हैं, ब्लास्टिंग चालू है और बांध निर्माण का काम यथावत जारी है। दूसरी ओर बांध विरोधी आंदोलन भी चल रहा है। पर्यावरणविद् श्री सुंदरलाल बहुगुणा, ऊपर उल्लेखित गांव सिराई में, अपनी पत्नी विमला और पुत्र प्रदीप को लेकर बस गए हैं। गांव-गांव में चर्चाएं चालू हैं। बांध के समर्थक और विरोधी दोनों ही चर्चाएं चला रहे हैं। ऐसे ही माहौल में भागीरथी तट पर बसे सिराई के उल्लेखित सुंदर मैदान पर पिछली मई की 30 व 31 को एक मित्र-मिलन हुआ। पत्थरों का चबूतरा बनाकर उस पर रेत डाल दी गई थी ताकि आरामदायक मंच बन जाए और पंडाल के स्थान पर एक बड़ा वृक्ष था जिसकी छांव में लोग बैठ गए। कई लोगों को धूप में भी बैठना पड़ा लेकिन अधिकाशं समय तक प्रकृति ने सहारा दिया - बादलों का छाता बनाये रही। आंधी भी आई और बौछार भी लेकिन उपस्थित लोगों की धीरज की परीक्षा लेकर चली गई।

मित्र-मिलन में करीब 75 पत्रकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक, स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्त्ता, विश्वविद्यालयों के छात्र उपस्थित थे। इनके अलावा कुछ स्थानीय लोग भी उपस्थित थे, जिनमें महिलाएं अधिकांश संख्या में थीं। उत्तर- दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सभी ओर से १२ राज्यों के लोग गोष्ठी में आए थे। श्री सुंदरलाल बहुगुणा ने गोष्ठी की

भूमिका रखते हुए उपस्थित लोगों से कहा कि वे सतत् विकास की नीति पर विचार करें तथा इस दृष्टि से यह भी सोचें कि टेहरी बांध को कैसे रोका जा सकता है ? गंगा बिक्री की वस्तु नहीं है जैसा कि आधुनिक कहे जाने वाले इंजीनियर और ठेकदार समझते हैं। गंगा लोगों की माँ है। गंगोत्री से ऋषिकेश तक ४ बड़े-बड़े बांध बनाए जाकर हिमालय के एक बड़े भूभाग को नष्ट किया जाने की योजना है- इसका जिक्र करते हुए श्री बहुगुणा ने कहा कि गंगा और हिमालय तो मानवजाति की अमूल्य विरासत है।

एस.के. राय समिति ने सन् ८६ के लगभग सरकार को समर्पित अपनी रिपोर्ट में यह निर्णय दिया था कि टेहरी बांध उचित नहीं है तथा खतरनाक है। आश्चर्य है कि शासन ने आफीशियल सीक्रेट एक्ट के अंतर्गत इसे प्रकाशित करने से मना कर दिया तथा यह रिपोर्ट सील बंद लिफाफे में सुप्रीम कोर्ट में पड़ी हुई है। उसके बाद "९० के प्रारंभ में जो भूमला-समिति की रिपोर्ट शासन को दी गई उसे भी प्रकाशित नहीं किया गया। यहां तक कि समिति के सदस्यों को भी वह रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई। एक सदस्य द्वारा तो अदालत में जाने की धमकी दिए जाने पर उन्हें रिपोर्ट की प्रति मिली। अब तो रिपोर्ट का सार समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है तथा लोगों को यह पता चल गया है कि समिति ने एक राय से बाँध बनाए जाने के खिलाफ अपना मत दिया है। शासन में प्रभावशील तबके इन रिपोर्टों के कारण बहुत संकट में फँस गए इसलिए समीक्षा के नाम पर फिर एक समिति ढोढियाल के नेतृत्व में बनाई गई। गोष्ठी में बतलाया गया कि पांच सदस्यीय इस समिति में अधिकांश लोग वे ही लिए गए जिनके हित टेहरी बांध से जुड़े हुए थे। श्री ढोढियाल के बारे में कहा गया कि उन्हें पुरस्कार स्वरूप गढ़वाल विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनाया जा रहा है। स्वाभाविक था कि इसकी रिपोर्ट बाँध के पक्ष में जाती। लेकिन इस समिति के भी एक सदस्य श्री गौड़ ने यह आरोप लगाया कि उनके हस्ताक्षर का दुरूपयोग किया गया है तथा उन्होंने बाँध के विरोध में अपना मत दिया था।

उपरोक्त तथ्यों की जब चर्चा हुई तो यह स्वाभाविक ही था कि गोष्ठी इस बात पर भी विचार करती कि तथ्यों को क्यों छिपाया जा रहा है, क्यों अलोकतांत्रिक कदम उठाए गए हैं तथा किन प्रभावशाली वर्गों के दबाव में विकास की नीतियाँ चलाई जाती हैं ? इसी दौरान यह भी प्रश्न उठा कि जब टेहरी बांध के खिलाफ चल रही लड़ाई का तार्किक आधार इतना मजबूत है तो एक मजबूत जन-आंदोलन क्यों नहीं दिखाई देता ?

श्री बहुगुणा के अतिरिक्त टेकरी बांध संघर्ष समिति के अध्यक्ष तथा प्रमुख स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री वीरेंद्र सकलानी तथा अन्य स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने विस्तार से इस बात की चर्चा की कि ७८-८० में आंदोलन बहुत तीव्र हो गया था। जेलों में गिरफ्तार लोगों को रखने की जगह भी नहीं बची थी। गांवों में कई रिटायर्ड वृद्ध फौजी हैं जिनके सामने आ जाने तथा अहिंसक सत्याग्रह में भाग लेने से एस. ए. एफ. के

जवानों का मनोबल टूट गया था। लेकिन जब भय का हथियार कामयाब नहीं हुआ तो ठेकेदारों से मिलकर लोभ और लालच के हथियार का उपयोग शुरू पर दिया है। झूठे वायदों तथा दलालों के बल पर लोगों को पुनर्वसन के मायाजाल में फंसाया जा रहा है। ठेकेदार, इंजीनियर और राजनीतिज्ञ का गठबंधन है। ये लोग प्रभावशाली हैं कि जन-विकास नीतियों के खिलाफ कुछ लोगों के फायदे वाली विकासनीतियों को मनवा लेने में कामयाब हो जाते हैं। विकासखण्ड से लेकर दिल्ली तक यह गठबंधन प्रभावशाली है।

गोविंदवल्लभ पंत एवं गढ़वाल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डॉ. वीर सिंह एवं प्रेमप्रकाश ने संगोष्ठी में भूकम्पीय खतरों एवं भौगोलिक अवस्थाओं का जिक्र किया। दुनियां के पहाड़ों में हिमालय की उम्र सबसे कम है। दक्षिण की तरह ये पक्के पहाड़ नहीं है। जिस मैदान में मित्र-मिलन की बैठक चल रही थी उसी के सामने खड़े पहाड़ इस बात की साक्षी दे रहे थे। 839 फीट ऊंचे टेहरी बांध के फलस्वरूप बनने वाली झील में जब ये पहाड़ समा जाएंगे तो इतनी गाद पैदा होगी कि झीलें भर जाएंगी। साधारण आदमी भी इन पहाड़ों को देखकर यह बात समझ सकता है। भूकम्पीय खतरे बांध तक ही सीमित नहीं होते वे आस-पास भी कहर बरसाते हैं। इस बात को और आगे बढ़ाते हुए वायुसेना के अवकाश प्राप्त एक अफसर श्री विश्नोई ने बतलाया कि जब रक्षा समिति की रपट यह कहती है कि कोई विशिष्ट खतरा नहीं है तब इसका अर्थ यही है कि खतरा तो है। यद्यपि वायुसेना बहुत सक्षम है लेकिन फिर भी इसका अर्थ यही है कि खतरा तो है। यद्यपि वायुसेना बहुत सक्षम है लेकिन फिर भी युद्ध युद्ध है। बाँध के टूट जाने पर जो तबाही होगी उसकी कल्पना ही भयावह है।

साहित्यकार श्री विद्यासागर तथा श्री जयाल आदि ने पहाड़ी संस्कृति तथा उसके प्रकृति के साथ अटूट रिश्ते का जिक्र करते हुए बतलाया कि जो विनाश होगा उसे भौतिक आंकड़ों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। स्वामी कमलानंद ने कहा कि टेहरी त्रिहरी का अपभ्रंश है। पुराणों में कहा गया है कि घोर संकट के समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश इसी स्थान पर आकर सलाह मशविरा करते थे इसीलिए इसे त्रिहरि कहा गया है।

समाजशास्त्री श्री नागेन्द्रदत्त, डेविड, रमेश बिल्लौरे, प्रदीप, करुणा आदि ने बतलाया कि इस अलाभकारी योजना पर एक रुपया खर्च करने पर कुल ५६ पैसे प्राप्त होंगे अर्थात् ४४ पैसे का घाटा होगा। उत्तरकाशी में बने मनेरी बांध, जिसमें नगण्य विस्थापन हुआ, का जिक्र करते हुए वैकल्पिक योजनाओं को चलाने का आग्रह हुआ। रोजगार का हल यही है पुनवर्सन के नाम पर जो रकम बांटी गई है वह रकम शराब और जुएं में खर्च हो रही है तथा नैतिक मूल्यों का घोर पतन हो रहा है इसकी चर्चा हुई तथा स्थानीय लोगों ने गाँव-गाँव जाकर लोगों को संगठित करने संकल्प व्यक्त किया।

गोष्ठी में लक्ष्मी आश्रम की लड़कियों के गीत, कवियों की जोशीली कविताएं,

चमनलाल चमन का संगीत दो दिन की लम्बी बहस को न केवल सरसता प्रदान करता रहा बल्कि उसने नया जोश भी पैदा किया। लड़कियों द्वारा गाये गये सामूहिक गीत "भगीरथी की घाटी में अब लड़ाई जारी है, बढ़े चलो, बढ़े चलो रोकना विनाश है" इन शब्दों की गूंज दूर-दूर तक फैली होगी ऐसा लगता है। इस अवसर पर रुड़की विश्वविद्यालय एवं जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के कुछ युवक-युवतियां, पत्रकार लपालीकर, अन्य पत्रकार एवं स्थानीय लोग गंगोत्री से एक पैदलयात्रा के जरिये ऋषिकेश पहुंचे। विकास की विनाशकारी योजनाओं के प्रति जागरुकता फैलाना इस यात्रा का उद्देश्य था।

गोष्ठी ने एक वक्तव्य अंगीकृत कर यह घोषणा की कि वह प्रकृति के विनाश एवं लोभ लालच पर आधारित तथाकथित आधुनिक विकास के खिलाफ है तथा इसे बदलने पर दृढ़ है। इसके लिए टेहरी, नर्मदा या अन्य बड़े बांधों और आणविक केंद्रों को रोकना जरुरी है। गोष्ठी में चर्चा के दौरान बार-बार नर्मदाघाटी में चल रहे आंदोलन का जिक्र हुआ तथा यह व्यक्त किया गया कि दोनों आंदोलन एक दूसरे से जुड़कर चलें। एक वक्ता ने कहा कि गंगा मां है और नर्मदा उसकी बेटी है। आज मां-बेटी दोनों ही संकट में है।

साभार - (सप्रेस)

अहिंसक आंदोलन की आवाज और कान पर रखे हाथ

"हम गुजरात के विरोधी नहीं विनाश के विरोधी हैं" - यह नारा लगाते हुए जब सत्याग्रही जत्थे अपने हाथ बाँधकर गुजरात की सीमा में प्रवेश करते हैं, तब शंख-ध्वनि और ढोल की जोशभरी आवाजों के साथ जो नजारा बन रहा है, वह अद्वितीय है। जहां तक कार्यकर्ताओं को जोश और जन विकास संघर्ष यात्रा के उत्साह का संबंध है, यह माहौल आजादी की लड़ाई की याद दिला रहा है। 'आजादी' के लिए जो समर्पण था, वह 'समता' या 'बराबरी' के लिए भी पैदा हो सकता है। उसका उदाहरण है यह संघर्ष यात्रा, जो बड़वानी के राजघाट से २५ दिसंबर को रवाना हुई थी, जिसके पांच जत्थे जिनमें एक जत्था केवल महिलाओं का था, इस लेख के लिखने तक गुजरात की सीमा में प्रवेश कर चुके हैं तथा अन्य चार हजार लोग होड़ की मुद्रा में मध्यप्रदेश और गुजरात की सीमा पर डेरा डालकर बैठे हैं कि उन्हें अंदर घुसने की इजाजत दी जाए। संचालन समिति अभी केवल तीस से चालीस लोगों के जत्थे को ही स्वीकृति दे रही है।

लेख लिखते हुए कुछ सत्याग्रहियों से खबर मिली कि उन्हें जबर्दस्ती जंगल में उतारा जा रहा है। उनके पास न खाना था और न ही बिस्तर व रात का समय था। अड़ जाने पर दाहोद छोड़ा गया। ऐसे ही कुछ और जत्थे पकड़े गए हैं, उनके साथ क्या सुलूक किया गया, अभी पता नहीं चला है। यह भी नहीं मालूम हो सका कि वे कहाँ हैं ?

खबर मिली कि गुजरात पुलिस ने सत्याग्रहियों की पिटाई की, कुछ महिला कार्यकर्ताओं को भी पुरुष पुलिस द्वारा पीटा गया और दुर्व्यवहार किया गया। बाबा आमटे ने इसके विरोध में गुजरात की सीमा में धरना दे दिया।

सत्याग्रह, सत्याग्रही जत्थे, आंदोलन अहिंसक संघर्ष ये सब शब्द अपना अर्थ खो चुके हैं। इसलिए यदि यह कहा जाए कि यह यात्रा मौजूदा हिंसा, घृणा और संकीर्ण स्वार्थों के वातावरण के बीच अहिंसा, प्रेम और व्यापक उद्देश्यों को हासिल करने के प्रयास में एक अद्वितीय उदाहरण है, तो उन लोगों को यह समझने में बड़ी कठिनाई होगी, जो म.प्र. और गुजरात की सीमा पर हो रही घटनाओं से परिचित नहीं है।

गुजरात के अधिकारी जन विकास यात्रियों से कह रहे हैं कि सरदार सरोवर पर काम रोकने की माँग को लेकर गुजरात की जनता में बड़ा रोष है। अधिकारियों का कहना है कि जनआक्रोश के कारण हिंसा हो सकती है जिसे वे रोक पाने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं सत्याग्रही यह जानते हैं कि जो लोग गुजरात की सीमा पर इकट्ठा किए गए हैं, वे वास्तव में गुजरात के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करते, लेकिन सत्याग्रही एक ओर तो इनसे भी टकराना नहीं चाहते, क्योंकि सरकार इस टकराहट को बहाना

बनाकर यह कहानी गढ़ना चाहती है कि 'यह तो लोगों को टकराहट है', दूसरी ओर वे अपने कदम भी पीछे नहीं हटाना चाहते। इसीलिए वे संभावित हिंसा के मैदान में हाथ बाँधकर एक के बाद एक उतर रहे हैं। क्या गांधी की अहिंसक शक्ति में अभी भी लौ बाकी है, इसका फैसला करने जा रहे हैं ये समर्पित जत्थे, उस प्रांत में जिसने गांधीजी को जन्म दिया था।

राजघाट से आरंभ हुई यह जन विकास यात्रा अद्‌भुत रही है। यात्रा में कम से कम 700 महिलाएँ रवाना हुई। जिनकी संख्या अलीराजपुर में जाकर हजार से अधिक हो गई। इन महिलाओं में एक बड़ी तादाद में युवतियां थी, जो विशेषतः आदिवासी, बड़ी तादाद में किसान और आदिवासी थे और जोशीले युवक थे। अपनी जरूरत का आटा, दाल बिस्तर आदि सब लोग अपना-अपना साथ में लाए थे। घाटी के बाहर के समर्थित दलों के युवजन जरूर अपना आटा-दाल साथ में नहीं लाए, उनकी व्यवस्था घाटी के लोगों के साथ होती है। यह यात्रा पैदल चलती है-नाचते-गाते और ढोल बजाते। जहां पड़ाव होता है, वहां भी ऐसा क्रांतिमय वातावरण होता है कि जिस किसी ने भी यह यात्रा देखी है वह रोमांचित और पुलकित हो उठा है। दिल्ली से 'निशांत-मंच' आया था। उसके प्रेरक गीतों और नुक्कड़ नाटकों ने इस माहौल में चार चाँद लगा दिए। 'ओज' और 'रस' का जो अनुकरणीय मिश्रण इस यात्रा में हुआ है, उसके कारण यह कहना मुश्किल है कि ओज लोगों को बाँधे हुए है या रस। जो भी हो, लेकिन यह एक ऐतिहासिक घटना है कि इस माह के शुरू होते ही जो कड़ाके की सर्दी पड़ी है, उससे किंचित मात्र भी विचलित हुए बिना बूढ़े और बच्चे भी खुले मैदान में ठिठुरती हुई रातें बिता रहे हैं, इस संकल्प के साथ कि यदि कई महीने भी बिताना पड़ें, तो बिता लेंगे। कई ने अपना संपूर्ण जीवन ही इस संघर्ष में कुर्बान कर देने का तय कर लिया है। मेधा पाटकर तो घाटी की देवी बन गई है और बाबा आमटे जैसे अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त समाजसेवी ने इस संघर्ष के लिए अपनी जान अर्पित कर देने का फैसला कर लिया है। लोग जानते हैं कि बाबा कोई राजनीतिज्ञ नहीं हैं। वे कठोर संकल्प वाले व्यक्ति हैं। स्थिति नाजुक न हो जाए, इसके पहले ही बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार करने की जरूरत है।

लेकिन गुजरात ने नेतृत्व के विचित्र राह पकड़ी है। सरदार सरोवर के समर्थन में प्रचार करने का उनका अधिकार है। लेकिन लोगों को इकट्‌ठा करके एक-दूसरे समूह को रोकने का प्रयास क्या लोकतांत्रिक है ? आश्चर्य यह है कि चुन्नीभाई वैद्य और बाबूभाई जसभाई जैसे गांधीवादी लोग इसका समर्थन कर रहे हैं। किसी भी सवाल पर औद्योगिक और बड़े ठेकेदारों और सरमायेदारों की लॉबी चाहे तो बड़ी भीड़ खड़ी कर सकती है, तब फिर सच्चे गांधीवादियों का क्या फर्ज है ?

क्या उन्हें पुलिस से नहीं कहना चाहिए कि जन विकास यात्रा के नागरिक अधिकार सुरक्षित रहें। सरकार को यदि बाँध पर कोई खतरा दिखाई देता है, तो पुलिस

कानून के अनुसार उसका प्रबंध करे, लेकिन एक समूह को सार्वजनिक सड़क पर जमा होने की इजाजत देकर और अन्य समूह को वहां से न गुजरने देकर क्या कानून और व्यवस्था का मखौल नहीं बनाया जा रहा है ?

इतना ही नहीं, इस यात्रा का मुकाबला करने के प्रयासों के संबंध में पुलिस, सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं के नाम पर जो कुछ उजागर हुआ है, वह चिंतनीय है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयुक्त के द्वारा छह सदस्यों का एक प्रक्षक दल जन विकास यात्रा और गुजरात की शांतियात्रा की संभावित टकराहट की रपट लेने के लिए सीमा पर आया था। श्री पीयूष तिर्की (सांसद) के नेतृत्व में आए इस दल के अन्य सदस्य थे- डॉ. विनथन, स्वामी मुक्तानंद, लालशंकर पार्गी, बाबा पन्सारे और सत्या। इस दल के सदस्यों ने भरी सभा में यह बतलाया कि उनकी जाँच-परख के अनुसार जो भीड़ जुटाई गई थी, वह जा चुकी है और अब जो हजार-पांच सौ की भीड़ रहती है, उनमें अधिकांश होमगार्ड के जवान हैं, जो सादे कपड़ों में मौजूद हैं। स्कूल के लड़के और लड़कियाँ भी भीड़ बढ़ाने भेजे जा रहे हैं। यह बात तो अखबारों से ही विदित हो गई है कि जहां जन विकास यात्रा में लोग अपना बिस्तर और खाना खुद लाए है, वहां शांति यात्रा में आने के लिए मुफ्त मोटर की व्यवस्था है, रजाई-गद्दे हैं और मुफ्त भोजनशाला है। विज्ञापन पर लाखों रुपए खर्च किए जा रहे हैं। श्री चिमनभाई को कम से कम इस बात को लिए तो धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने धनकुबेरों द्वारा आयोजित और गरीबों द्वारा आयोजित रैलियों को आमने-सामने करके जन विकास की अवधारणा को अधिक स्पष्ट करने का काम किया है।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि गुजरात के कुछ समाचार पत्र भी भ्रमपूर्ण खबरें दे रहे हैं। जन विकास यात्रा को युद्ध के लिए आतुर फौज के रूप में निरूपित किया गया। म.प्र. के एक समाचार पत्र ने भी अपने संपादकीय में गुजरात के नेतृत्व को कोसते हुए बाबा आमटे पर भी टिप्पणी कर दी कि उनकी यात्रा में आदिवासी तीर कमान और गोफन लेकर चल रहे हैं, जबकि यह असत्य है। स्वामी अग्निवेश के बार में लिखा गया है कि वे गुप्त रूप से बांध पर पहुंच गए हैं। बाबा आमटे और मेधा पाटकर में झगड़ा हो गया या मेधा यात्रा छोड़कर चली गई हैं। एक अखबार ने तो हद ही कर दी, जब उसने यह छापा कि बाबा आमटे ने अपनी यात्रा में २५ रु. रोज और शराब का लालच देकर लोगों को जमा किया हैं। इस तरह की हीन हरकतों का क्या अर्थ है ?

लोगों के मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या यह यात्रा सफल होगी ? विकास की जिस वैकल्पिक धारणा को लेकर यह आंदोलन चल रहा है, उसके लिए मुकम्मिल वातावरण अभी नहीं बना है, तो सफलता कैसे मिलेगी ? सरदार सरोवर बनाने पर सरकार तो तुली हुई है, तब फिर आंदोलन का क्या होगा ?

पहली बात तो यह है कि नवजागरण को लिए चलाया जाने वाला कोई भी

आंदोलन असफल नहीं होता । इस आंदोलन में यात्रा के दौरान किसानों और आदिवासियों में जो समीपता आई है, वह अद्वितीय है। एक बड़ी तादाद में महिलाएं साथ में चल रही है, खाना खा रही हैं, साथ में नाच रही हैं, क्रांतिकारी गीत गा रही हैं, जेल जा रही हैं। बाबा आमटे के शब्दों में "यह नारीमुक्ति आंदोलन है।" कई रूढ़ियाँ इस यात्रा के दौरान टूट रही हैं। समर्थित दलों के जो युवक और युवतियाँ यात्रा से जुड़े हैं, उनके हौसले और बुलंद हुए हैं और उनकी समझ और संकल्प बढ़ा है।

सरकार की ओर से बार-बार यह कहा जाता है कि इस आंदोलन में बाहरी लोगों का क्या स्वार्थ है ? जो राजनेता कुर्सी को ही राजनीति समझते हैं, उनकी समझ से यह बात परे हैं कि वे यह जान सकें कि ऐसे भी युवजन होते हैं, जो विचार के लिए समर्पित होना जानते हैं। अपने ही देश के नौजवानों को बाहरी कहने वाले राजनेताओं की समझ पर तरस ही खाया जा सकता है, लेकिन इससे यह भी साबित होता है कि वे जनविकास आंदोलन की बढ़ती हुई शक्ति से चिंतित हो गए हैं।

सरकार और व्यवस्था की घबराहट का एक और उदाहरण है- यह आरोप कि पर्यावरणवादियों को विदेशी मदद मिलती है। गुजरात की सीमा पर एक बड़ा बोर्ड टांगा गया है, उस पर लिखा है "पर्यावरणवादियों ? ये विदेशी दोस्त क्यों ? क्या धन के लिए ? क्या प्रसिद्धि के लिए ?"

मेधा पाटकर ने तो कई बार ऐलान किया है कि यदि विदेशी मदद है, तो सरकार साबित क्यों नहीं करती ? यह बात कितनी विचित्र है कि जो सरकारें बिना विदेशी मदद के सरदार सरोवर और नर्मदा सागर बना ही नहीं सकती और बार-बार विदेशी मदद की ओर हाथ फैला रही हैं, वे ही यह आरोप लगाती हैं। क्या वे इतनी कमजोर हो गई हैं कि उनके लिए यही एक तिनके का सहारा बचा है ?

इस जन विकास यात्रा में 'फ्रेन्ड्स ऑफ दि अर्थ जापान' का एक दल शरीक हुआ। नार्वे हॉलैंड, बेल्जियम और यू. एस. ए. के विद्यार्थी भी शरीक हुए। तथ्य यह है कि पर्यावरण और विकास की पद्धति का मुद्दा एक अंतरराष्ट्रीय मुद्दा बन गया है। चूँकि यह सवाल समस्त मानव जाति के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है और नर्मदा घाटी योजना दुनिया की सबसे बड़ी और सबसे अधिक विध्वंस करने वाली योजना है, इसीलिए भोपाल गैस कांड, चेरनोबिल आदि बड़ी दुर्घटनाओं में दिखाई गई दिलचस्पी की तरह नर्मदा योजना में दुनिया भर के पर्यावरणवादी दिलचस्पी दिखा रहे हैं। जैसा कि इस यात्रा के नामकरण से ही ज्ञात होता है कि यह आंदोलन विकास की वैकल्पिक पद्धति के लिए है। ऐसी पद्धति जो प्राकृतिक संसाधनों को बचाते हुए लगातार चल सके। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि आंदोलनकारी निरे आदर्शवादी हैं और उनके पास व्यवहारिक दृष्टिकोण नहीं है। सरदार सरोवर की लड़ाई भी जन विकास की बड़ी लड़ाई का एक मोर्चा है। इस मोर्चे पर भी लड़ाई लड़ते हुए हमेशा यही कहा गया है कि हम

सरदार सरोवर पर पुनर्विचार की मांग करते हैं लेकिन गुजरात के मुख्यमंत्री बात नहीं करना चाहते। वे कहते हैं कि सरदार सरोवर का काम एक दिन भी नहीं रुकेगा। आंदोलन के नेताओं का कहना है कि काम चाहे जारी रहे, लेकिन ऐसे काम जिन्हें वापस लौटाना संभव न हो, तब तक स्थगित रखा जाए, जब तक कि चर्चा जारी रहे। आंदोलनकारियों का कहना है कि खिर-बेड पर दीवाल उठाने, विस्थापितों को हटाने और जंगल की कटाई का काम स्थगित रखा जाए। दुर्भाग्य से गुजरात का नेतृत्व व्यापक दृष्टिकोण से नहीं देख पा रहा है।

देशभर के चिंतनशील लोगों और संगठनों को तथा देश की संसद को उपरोक्त मसले पर विचार करना चाहिए। बाबा आमटे और मेधा पाटकर के नेतृत्व में एक अभूतपूर्व अहिंसक सत्याग्रह चल रहा है। गुजरात की सरकार को इस मसले को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाना चाहिए।

आज जब दुनिया भर में गांधी की विकास-पद्धति की ओर आकर्षण बढ़ रहा है, नर्मदा घाटी की लड़ाई इसका प्रतीक बन गई है, तब यदि गुजरात के गांधीवादी चुप रहे या पश्चिमी अर्थतंत्र के साथ जुड़े रहे तो इसे इतिहास कदापि माफ नहीं करेगा।

साभार - नईदुनिया, इन्दौर

बनेगी रणस्थली, खूबसूरत मणिबेली

होली के दो दिन पूर्व की चांदनी रात उनके लिए अविस्मरणीय रहेगी जो मणिबेली में मौजूद थे। होली का जश्न तो कही भी और कभी भी मनाया जाए, आनन्द आ ही जाता है। लेकिन जब प्रकृति अपने भरपूर सौंदर्य के साथ खेल रही हो तब उसके साथ और उसके अभिन्न अंग बनकर जश्न मनाएं तो बात कुछ और ही होती है। मणिबेली बसा हुआ है नर्मदा की ऊंची घाटी पर, वहां ठीक नीचे नर्मदा बहती हैं- अपनी सुंदरता बिखेरते हुए। ऐसे सुन्दर स्थल हमारे पूर्वजों की नजर से कभी ओझल नही हुए इसीलिए वहां एक अति प्राचीन मंदिर भी है जहां कहा जाता है कि "स्वयंभूशिव" विराजमान है। इसी शूलपाणेश्वर के मंदिर पर मई के आसपास एक बड़ा मेला भरता है जिसमें असंख्य लोग एकत्रित होते हैं। आस-पास का इलाका आदिवासी बहुल इलाका है।

मणिबेली (महाराष्ट्र) के मैदान पर पेड़ों के नीचे 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' द्वारा आयोजित एक सभा दोपहर से ही चल रही थी। ज्यों ही संध्या फैलने लगी मैंने देखा कि नर्मदा के इस और उस पार से छोटे-छोटे बच्चे, युवक-युवतियां, स्त्री-पुरुष और वृद्ध चले आ रहे हैं, सजधज कर। बच्चों के हाथ में तीर कमान थे तो युवक मुकुट धारण किए हुए थे जिनमें ऊँचे-उँचे मोर के पंख लगे हुए थे। जिन्हें पंख नही मिले उन्होंने साटी ही खोंस ली थी। उनके चेहरे और शरीर भिन्न-भिन्न रंगों से रंगे हुए थे। कुछ ने सुंदर आकृतियां भी बना रखी थी। कुछ अधिक अनुभवी लोग बड़े-बड़े ढोल लिए हुए थे। आंदोलन का अनुशासन बड़ा कड़ा है इसलिए मंच पर मेरा शरीर बैठा तो रहा लेकिन दरअसल मन इन उल्लास भरे नव-आगन्तुकों के बीच चला गया था। यों आंदोलन की सभाएं भी नीरस नही होती हैं। आंदोलन के सिपाही जब जोश भरे गाने गाते हैं या गुजरात की भद्रा बेन बताती हैं कि "अमे डेम रोकवा माटे ढोल बगाड़यो छेः" तो समा बंध जाता है और अहमदाबाद की एक संस्था "लोकनाद' के चारु और विनय अपने पैरों में बंधे घुंघरू की नाद से लय मिलाकर कविता में बात करते हैं तो वृदध से वृदध भी एक बार तो हिल उठता है। लेकिन फिर भी आयोजकों ने सभा को समेट लिया है। शायद इसीलिए कि उस भूमि पर बरसात शुरू होते ही एक बड़ी लड़ाई छिड़ने वाली है। पता नही इस लडाई मे कितनी कुर्बानी देनी होगी। इसलिए लड़ाई छिड़ने के पूर्व जो यह मधुर चादनी रात की यह आखिरी होली है उसे लोग जीभर के मना लें यह भावना भी मन के किसी कोने में रही होगी। युवक-युवतियां, स्त्री-पुरुष, बच्चे सभी रातभर नाचते रहे। ढोल के थाप और कमर में बंधे हुए छोटे-छोटे घंटालनुमा घूंघरू केवल आदिवासियों को ही नही बांधे रहे। बंबई, दिल्ली और अन्य नगरों से आयी युवक-युवतियां भी इनसे बंधी रही। सभा होली के दो दिन पूर्व थी तो आदिवासियों ने

होली का जश्न भी दो दिन पूर्व ही मना लिया। यह भी आंदोलन की नेत्री मेधा बेन का करिश्मा ही है कि नर्मदा आंदोलन हमारी संस्कृति एक अंग बनता जा रहा है। यह स्वाभाविक भी है। नर्मदा नष्ट होती है तो एक विशिष्ट संस्कृति उजड़ती है इसलिए नर्मदा को बचाने का आंदोलन केवल भौतिक आवश्यकताओं भर का ही आंदोलन नहीं है। यह एक सभ्यता और संस्कृति को डूबने से बचाने का भी आंदोलन है।

मणिबेली से पिछली जनवरी की 30 तारीख से एक यात्रा सरदार सरोवर के डूब में आने वाले गांवों में से निकली थी, यह जानने के लिए कि क्या वे अपने संकल्प "डूबेंगे पर हटेंगे नहीं" पर दृढ़ हैं। नर्मदा के दूसरे किनारे के डूब क्षेत्र में भी इसी तरह की यात्रा गुजरात के बड़गांम से निकली थी। दोनों यात्राएं पिछली 4 मार्च को बड़वानी (म.प्र.) में समाप्त हुई थीं। इसी के तुरंत बाद दूसरे ही दिन (5 मार्च को) मणिबेली में पड़ाव हुआ। यात्रा की इस प्रक्रिया में लोगों को प्रोत्साहित किया गया था कि सोच समझ कर अपनी राय व्यक्त करें कि वे हटना चाहते हैं कि नहीं। इसे " लोक निवाड़ा" (लोगों का फैसला) कहा गया था। 22,523 परिवारों की ओर से मणिबेली में यह घोषणा हुई थी कि 21,961 परिवारों ने न हटने का संकल्प किया है। सभा उठते-उठते इसमें 300 की संख्या और बढ़ गई थी जो दूसरे दिन तक मणिबेली में साढ़े बाइस हजार तक पहुंच गई थी और संख्या बढ़ती जा रही थी।

धन और समय के कारण जन-आंदोलनों की अपनी सीमाएं होती है। लेकिन फिर भी आंदोलन का दावा है कि लोगों की संख्या एक लाख तक पहुंचेगी। आंदोलन का दावा छोड़ भी दें तो भी इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि नर्मदा घाटी में कम से कम 60 हजार लोग तो ऐसे हैं ही जिन्होंने घोषणा की है कि वे नहीं हटेंगे। फिर समर्पित दल के लोग हैं जो डूब जाने तक के लिए तैयार हैं। इसके अलावा जो दो-तीन साल पहले पुनर्वसित हो चुके थे वे भी वापिस लौट रहे हैं। बड़वानी में 20 लोगों ने अपने पट्टे वापिस करने की घोषणा की।

बरसात जैसे ही शुरू होगी मणिबेली में फिर संघर्ष छिड़ेगा। सरकार कहती है कि गांव खाली हो गया लेकिन यह सच नहीं है। आधे से अधिक, करीब 55 परिवार अभी भी वहां बसे हुए हैं। इनकी तथा आसपास के अन्य डूब में आने वाले लोगों के प्रति अपनी एकता प्रदर्शित करते हुए हजारों आदिवासी किसान एवं नवजवान आगामी जून-जुलाई में यहां एकत्रित होंगे। सरकार के समक्ष बड़ी विकट समस्या खड़ी होगी। लोग तो हटेंगे नहीं। घाटी में बड़ी दृढ़ता है और जोश है। अगर सरकार लोगों को हटने पर राजी नहीं कर पाती है तो सरोवर में पानी नहीं भरा जा सकेगा और यदि जोर जबरदस्ती लाठी-गोली चलाती है तो उसका यह दावा जमीदोज़ हो जाएगा कि सरदार सरोवर के लिए लोगों ने अपनी सहमति दी है। फिर वह किस मुंह से विश्व बैंक या अन्य देशों से सहायता मांगेगी ? जिसे सरदार सरोवर की जरा भी जानकारी है वह यह

जानता है कि देशी धन के बिना यह भारी-भरकम परियोजना पूरी नहीं हो सकती। असहमत लोगों की संख्या को उपरोक्त साठ हजार का आंकड़ा न्यूनतम है। क्या इतनी बड़ी संख्या को नजर-अंदाज करके कोई भी योजना चल सकती है ? सरकार कहां - कंहां इंतजाम करेगी ? यदि एक भी आदमी डूब गया तो सरकार पर पानी से हत्या करने का जुर्म लगेगा तथा ऐसी सरकार टिक नहीं सकेगी। कुछ लोग, खास करके घाटी के बाहर के यह कहते हैं कि बांध पर इतना अधिक काम हो गया है कि अब यह कैसे रूक सकता है। इस पर पहली बात तो यह कि यदि किसी ने धोखेधड़ी से राक्षसी बम बना लिए हैं तो क्या इस तरह का तर्क न्यायिक है कि बम अब बन ही चुका है तो इसे छोड़ना ही पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि बांध बन भी गया तो क्यों लोगों की बिना सहमति के उसमें इतना पानी भरा जा सकेगा कि लोग डूब जाएं। बांध से बड़ा खर्चा तो पानी को पहुंचाने का होगा। तर्क तो यह होना चाहिए कि जो-जो लोग अलोकतांत्रिक तरीके से हठधर्मी के आधार पर बांध पर किये गए खर्च के लिए जिम्मेदार हैं उन्हें कटघरे में खड़ा किया जाए तथा बांध यदि बना ही लिया गया तो हम उसमें पानी जमा नहीं होने देंगे ताकि खाली बांध भावी पीढ़ी को इस बात की याद दिलाता रहेगा कि हमारे पूर्वज कितने खोखले ओर पाखण्डी थे। बांध की दीवार खड़ी कर लेना सरकार के हाथ में है लेकिन अपनी जमीन पर सत्याग्रह करके डटे रहना लोगों के हाथ में है। लोग दृढ़ रहेंगे तो कैसे पानी भरा जा सकेगा ?

इस समय सरकार खुद डरी हुई है। यही कारण है कि उसे झूठ और क्रूरता का सहारा लेना पड़ रहा है। बाबा आमटे जैसे अद्वितीय निस्वार्थी देशभक्त पर यह लांछन लगाया कि वे घाटी छोड़ कर चले गए हैं तथा आंदोलन नेतृत्व विहीन हो गया है। जबकि इस बात पर गौरव करना चाहिए था कि स्वास्थ्य और वृद्धावस्था की कतई परवाह न करते हुए वे साम्प्रदायिकता की आग को बुझाने निकल पड़े थे। अब वे फिर नर्मदा के किनारे छोटी कसरावद की अपनी पुरानी कुटिया "निजबल" में लौट आए हैं।

पिछले दिनों की ही घटना है कि सरकार ने अलीराजपुर तहसील के अंजनवारा में दो दिन तक गोलियां दागीं, लोगों के झोंपड़े तोड़ डाले, महिलाओं के साथ अत्याचार किए और यहां तक कि हाथ चक्कियां तक तोड़ डालीं। कुसूर यह था कि अंजनवारा और उससे लगे हुए बारह गांव के लोगों ने जो मध्यप्रदेश के पहिले चरण में डूब में आ रहे हैं, हटने से इंकार कर दिया है। सरकार को अपनी क्रूरता को उचित बताने के लिए यहां तक झूठ फैलाना पड़ा कि आंदोलन चलाने वाले नक्सलवादी हैं। झूठ और दमन के बल पर ही यदि सरकार बांध का काम चलाती है तो समझ लेना चाहिए कि सरकार नर्मदा आंदोलन के सामने डर चुकी है।

एक बात और, सवाल केवल बांध का नहीं है। इस समय देशभर में पर्यावरण, विकास, विस्थापन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों को लेकर स्वयंस्फूर्त

आंदोलन उठ रहे हैं। ये इस बात के दिशा संकेत हैं कि बुनियादी समस्याएं क्या हैं ? नवयुवकों ने इन जन-आंदोलनों से जुड़कर उदाहरण प्रस्तुत किया है। ये सब बातें "व्यवस्था" की समझ से बाहर हैं लेकिन वे लोग जो "व्यवस्था" के गुलाम नहीं हैं क्या इन्हें समझने का प्रयास करेंगे ? ऐसे लोग सरकार और राजनेताओं में भी हो सकते हैं।

साभार - सप्रेस आलेख- 131 92-93

बाई चारा मत डरो, 'बंजारी ढाल' को याद करो

पिछले नवंबर की बात है। सतपुड़ा की पहाड़ियों में बसे एक गाँव भौरा के वन विभाग के कार्यालय पर एक प्रमुख अधिकारी की उपस्थिति में वन विभाग के एक कनिष्ठ अधिकारी ने पाँच आदिवासियों को घूस के रूप में लिये गये 1150 रु. वापस किये। सैकड़ों आदिवासियों के समक्ष घूस लौटाने की यह कार्रवाई हुई, जो इसकी माँग कर रहे थे। यह सिलसिला होशंगाबाद के केसला-भौरा क्षेत्र में तेजी से फैला। किसान आदिवासी संगठन ने इस अभियान का नेतृत्व किया था। संगठन ने दावा किया कि उसने रिश्वत में लिए गए 32,000 रु. संबंधित अधिकारियों से वापस करवाए हैं।

सतपुड़ा घाटी की एक और घटना का जिक्र मैं यहाँ करना चाहता हूँ। इसी माह में सुप्रीम कोर्ट का एक निर्णय हुआ है, जिसमें यह कहा गया है कि सुनील और राजनारायण को शासन ने अनावश्यक बंदी बनाया तथा इन दो सामाजिक कार्यकर्ताओं को हथकड़ी पहनाना अनुचित ठहराया। इन दोनों युवकों ने इस बात के लिए धरना दिया था कि स्कूल में शिक्षक अनुपस्थित रहता है। शासन कई धाराएँ लगाकर इन्हें बार-बार गिरफ्तार करती रही थी।

होशंगाबाद जिले के केसला क्षेत्र में एक गाँव है सहेली। करीब 12-13 वर्ष पूर्व डॉ. मल्होत्रा ने अपनी 54 बीघा जमीन राम मनोहर लोहिया की स्मृति में कोई गतिविधि चलाने के लिए दान में देने का निश्चय घोषित किया था। उस समय जनता पार्टी की सरकार थी। देश के विख्यात समाजवादियों की एक समिति बनी थी। लोहिया अकादमी की बड़ी आकर्षक योजना बनी थी। मुझे बताया गया था कि डॉ. मल्होत्रा के द्वारा ही ट्रस्ट के नाम जमीन स्थानांतरित करने में आनाकानी करने के कारण यह योजना धरी की धरी रह गई।

80 के दशक के मध्य कुछ नौजवान, जो समाजवादी नेता किशन पटनायक से जुड़े थे, लोहिया का सपना संजोते हुए इधर-उधर घूमते-घामते सहेली की उपरोक्त स्वप्निल लोहिया अकादमी में अटक गए। इटारसी का एक दुबला-पतला 23-24 वर्ष का युवक राजनारायण यहाँ अकेला ही रह रहा था और जागृति फैलाने का काम कर रहा था। इन लोगों ने भी यही बस जाने का तय कर लिया। किशन पटनायक कई बार यहाँ आए। डॉ. मल्होत्रा से चर्चाएँ हुई और इन नौजवानों ने सपना संजोया कि यही रहकर लोहिया के विचारों को फैलाएँगे। उन्हें आशा हुई कि जमीन का उपयोग वे कर सकेंगे और इसके इंतजाम के लिए एक ट्रस्ट भी बनाया जा सकेगा। दिल्ली यूनिवर्सिटी से निकला छात्र सुनील, आई. आई. टी. के व्याख्याता श्री आलोक, बिहार के श्री सुरेन्द्र झा और उनकी पत्नी गिनी झा दो झोपड़ों में (जिसमें उन्होंने लोहिया अकादमी कल्पित की होगी) रहने लगी।

सतपुड़ा अंचल के इस क्षेत्र में मुख्य रूप से दो समस्याएँ विकट थी। एक तो पीने के पानी की जरूरत और दूसरी विस्थापन की समस्या। आर्डिनेंस फैक्टरी और उसके अस्त्रों के परीक्षण के लिए प्रूफ रेंज की जरूरत ने सैकड़ों आदिवासियों एवं किसानों को शरणार्थी बना दिया था, शासन ने उन्हें जमीन देने का वायदा किया था। कुछ को मौखिक आदेश पर जमीनें मिली थी। लेकिन बाद में फिर छीन ली गई। कई मजबूर शरणार्थी "प्रूफ रेंज" के दायरे में घुसकर तथा अपनी जान जोखिम में डालकर ताँबे-पीतल की खोल बटोरने के लिए दौड़-भाग करने लगे। एक मोटा अंदाज है कि इस प्रक्रिया में 500 लोग मारे गये और हजार से अधिक अपंग हो गये। एक गाँव छीदपानी इस बात के लिए मशहूर हो गया है कि वहाँ विधवाएँ ही बची हैं। थोड़े बहुत जो पुरुष बचे हैं, वे सब या तो बच्चे हैं या बूढ़े हैं।

जब तवा परियोजना आई, तब फिर सैकड़ों लोगों को विस्थापित किया गया। राजनारायण ने बतलाया था कि पिछले पन्द्रह सालों में 100 गाँवों के करीब 50,000 लोग विस्थापित हो चुके हैं। शासन की ओर से जमीन के पट्टे दिये जाने के आश्वासन पर लोग किसी तरह जिंदगी बसर करते रहे। लेकिन तब तो उन पर गाज ही गिर गई कि जब यह कहा गया कि नर्मदा परियोजनाओं के विस्थापितों को यहाँ बसाया जाएगा, जमीन प्राप्त होने की बची-खुची आशा भी समाप्त हो गई।

लोहिया अकादमी में आए इन नौजवानों की प्रेरणा से किसान आदिवासी संगठन का निर्माण हुआ तथा इस संगठन ने जन प्रशिक्षण एवं धरनों, जुलूसों, पैदल यात्राओं, सभाओं आदि कार्यक्रमों के जरिए लोगों की आवाज को जबर्दस्त ढंग से उठाया। एक बार तो पैदल जुलूस मुख्यमंत्री मोतीलाल वोरा से मिलने भोपाल पहुँचा था। क्षेत्रीय लोग भी इस संगठन की गतिविधियों में जुड़ते गये। किशोर भारती में निर्मित मजदूर आदिवासी संगठन भी जुड़ गया तथा पिपरिया तथा आसपास के क्षेत्र के समता संगठन के युवा साथी एवं बुद्धिजीवी भी जुड़ने लगे। हरगोविंद, गोपाल राठी, हरीप्रसाद, मायाराम, नरेंद्र, वीरेन्द्र ऐसे अनेक युवकों की टोली मैदान में सक्रिय हो गई।

वर्तमान युग में जहाँ जीवन के मूल्य इतने गिर चुके हैं कि कोई बिना पद या धन के लालच के सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने को तैयार ही नहीं होता है। सतपुड़ा अंचल के इस हिस्से में काम कर रहे समर्पित युवकों की टोली को देखकर किसी भी राष्ट्रप्रेमी का दिल उछल सकता है। लेकिन प्रशासन का रवैया अलग ही रहा। उनकी निगाह में इन युवकों की गिनती अपराधियों और नक्सलवादियों में ही की जाती है।

खैर, व्यवस्था की ओर से कुछ भी कहा जाता रहे, लेकिन ऐसे लोगों को यह धरती पैदा करती रहेगी, जो इसके रहने वालों में जागृति पैदा करने के लिए समर्पित भाव से जूझते रहेंगे। राजनारायण और सुनील जेल में थे। उन्होंने तय किया था कि वे जमानत देकर बाहर नहीं आएँगे। राजनारायण के भाई की शादी थी। प्रशासन की ओर

से इसरार किया गया, लेकिन उसने जमानत नहीं दी। बैठकों में और आपसी व्यवहार में शालीन और शांत रहने वाले राजनारायण से अधिकारी बहुत डरते थे। क्योंकि कर्म में वह कट्टर था। ऐसे हजारों अनाम युवजन आखिरी आदमी के साथ जुड़कर उनके हितों की लड़ाई लड़ रहे हैं। लोहिया अकादमी का राजनारायण, भी उन्ही अनाम में से एक था, जो अब नहीं रहा। पिछले दिनों एक जीप दुर्घटना में समता संगठन के नवनिर्वाचित अध्यक्ष शिवचंद्र तथा ड्राइवर के साथ राजनारायण इस दुनिया से बिदा हो गया।

शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित करना भी पाखंड है, ऐसा कई बार महसूस होता है। लेकिन मैं अब थक चुका हूँ, आशा ही कर सकता हूँ कि समर्पण की बाती जलती रहेगी। राजनारायण ने अपने साथियों के साथ इस क्षेत्र में एक नई चेतना पैदा की है। ये युवक जमीन का उपयोग करते हुए खेती-बाड़ी, खोज या संस्थागत काम तो नहीं कर सके, लेकिन युवकों की इस टोली ने इस इलाके में इतिहास बोध कराया है और आत्मगौरव पैदा किया है। इस क्षेत्र में बंजारी ढाल एक जगह है, जहाँ महिलाओं ने उनके चारागाह पर अंग्रेजों द्वारा भारी टैक्स लगाने पर हँसिया, लेकर मुकाबला किया था। इस किंवदंती को उन्होंने जिंदा किया है तथा अब लोगों की जुबान पर ये शब्द चढ़ गये हैं - "बाईचारा मत डरो, बंजारी ढाल को याद करो।"

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 26-5-90

जनजागृति से घबराकर नक्सलवाद नाम दे दिया

घटनाएँ खबर बनती हैं, जो केवल पढ़ी जाती हैं लेकिन घटनाएँ बोलती भी हैं। घटनाओं को चटपटा बनाया जा सकता है ताकि वे महत्वपूर्ण खबर बन जाएँ। खबर चाहे जितनी मसालेदार हो शाम तक भुला दी जाती है, लेकिन खबरों के पीछे जो आत्मा होती है, उसे अगर पकड़ा जा सके तो शायद हमारी तकदीर बदल सकती है।

पिछली फरवरी की बात है, आलीराजपुर (झाबुआ) के किटी गाँव में वनकर्मियों का आदिवासियों से संघर्ष हुआ। संघर्ष का मुद्दा था सार्वजनिक उपयोग की जमीन, जहाँ आदिवासी वर्षों से अपने पशु चराते आए हैं। वन जवभाग भी इस पर अपना कब्जा जमाना चाहता है। उद्देश्य तो वन विभाग का भी सार्वजनिक है अर्थात् वन लगाना। लेकिन इतिहास यह कहता है कि अँगरेजों के जमाने से सार्वजनिक भूमि पर कब्जा जमाया जाना शुरू हुआ, चाहे जंगल हो या पहाड़ हो या चारागाह हो। जिनका जीवन जंगल या सार्वजनिक भूमि पर आधारित था, वे प्राकृतिक संसाधनों से या तो वंचित कर दिए गए या बेदखल कर दिए गए और जंगल नष्ट हो गए।

अंगरेजों ने तो जंगल को केवल लकड़ी की खदान समझकर रुपया कमाने के लिए उसका दोहन किया, लेकिन स्वदेशी सरकार के रवैये में भी कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ। वन विभाग को व्यापारिक विभाग के रूप में देखा गया। नारा तो "सामाजिक वानिकी" का लगा, लेकिन दृष्टि व्यापार की रही। इसे ही विकास कहा गया। आजादी के बाद चालीस वर्षों तक तो लोग इस भ्रम में रहे कि विकास होगा, तो लाभ उनको भी मिलेगा। लेकिन पिछले दशक में यह अहसास बड़ा तीव्र हुआ है कि समाज के एक बड़े हिस्से को शायद नागरिक ही नहीं माना जाता। गरीब लोगों का जीवन स्तर सुधरना तो दूर रहा उनको उनके जीवन आधार से ही वंचित किया जा रहा है। विकास के नाम पर इस तरह बेदखल और बाहर किया जा रहा है कि पानी से मछली को निकालकर फेंक देने की उपमा अतिशयोक्ति नहीं है।

किटी के ग्रामवासियों के लिए चारागाह उनका जीवन-आधार है जो छीना गया। चारागाह छीने जाने पर धरना किया गया, जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। आदिवासियों का कहना है कि वनकर्मियों द्वारा उन पर गोलियाँ चलाई गई। वन अधिकारियों का कथन है कि उन पर गोफन आदि से वार हुआ। कथनों के विवाद में यदि हम भी पड़ें तो भी एक तथ्य पर्याप्त समझ दे देता है। तथ्य यह है कि इस क्षेत्र में 'खेडूत मजदूर चेतना संगठ' नामक एक संगठन काम कर रहा है। इस संगठन के कर्ताधर्ताओं को एक दिन पूर्व ही बिना किसी कारण के गिरफ्तार कर लिया गया। प्रकरण उच्च न्यायालय में गया और उच्च न्यायालय ने गैर कानूनी गिरफ्तारी की निंदा की। फरवरी की बात अभी तक

आई-गई हो जाती यदि प्रशासनिक अधिकारी अपनी ही घोषित नीतियों के अनुरूप आदिवासियों को विश्वास में लेकर उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप विकास कार्यक्रम चलाते।

लेकिन ऐसा होता नहीं है क्योंकि रचे गए स्वार्थ के ताने-बाने में उनके हित टकराने लगते हैं। फिर किस्से गढ़े जाते हैं कि "आतंकवादी घुस आए हैं।" "नक्सलवाद फैल रहा है।" दुःख की बात यह है कि इस गैर जिम्मेदारी के शिकार वे नवजवान लड़के और लड़कियाँ होते हैं, जो समर्पित भाव से काम करने के लिए दूर-दराज के गांवों और जंगलों में निकल पड़े हैं। चटपटी खबरें बनाने के लालच में कोई-कोई पत्रकार भी लिख देते हैं "नक्सलवादी तर्ज पर गतिविधियां।" क्या यह सब इस देश में इसलिए चलाया जा रहा है कि लोगों का और युव-जनों का विश्वास अहिंसक आंदोलनों से उठ जाए। जो नक्सलवाद का हौवा खड़ा करते हैं, कहीं वे उसे बढ़ावा तो नहीं देना चाहते हैं।

छोटी-छोटी घटनाओं की जानकारी सभी को नहीं होती है, इसलिए बड़ी घटनाओं का उदाहरण ले लें। नर्मदा घाटी में घाटी के लोगों द्वारा जबरदस्त अहिंसक लड़ाई लड़ी जा रही है, इसे कौन नहीं जानता। समर्पित युवजन लगे हैं, यह भी जगजाहिर है। लेकिन मंत्रियों और प्रशासनिक अधिकारियों ने "विदेशी" "बाहरी" आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए नेतृत्व को बदनाम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अब कहा जा रहा है कि नर्मदा आंदोलन में नक्सलवादी घुसपैठ करने जा रहे हैं।

असल में यह समझने की जरूरत है कि व्यवस्था कितनी ढीठ, संवेदनहीन और गैर कानूनी है। एक बड़ा उदाहरण सार्वजनिक भूमि के उपयोग की लड़ाई का है। कर्नाटक में एक कंपनी को 75.000 हेक्टर सार्वजनिक भूमि, जिस पर लोग अपने ईधन, चारा, फल-फूल, पत्ते ओर लकड़ी पर निर्भर थे, युकेलिप्ट्स उगाने के लिए दे दी गई। इस कंपनी में आधे शेयर बिड़ला के और आधे सरकार के थे। वित्त संस्थाओं से सरकार की सौ फीसदी गारंटी पर सौ फीसदी ऋण की व्यवस्था की गई। सरकार केवल साढ़े बारह फीसदी पैदावार ले सकती थी बाकी साढ़े सत्यासी पर बिड़ला की कंपनी का अधिकार हुआ।

कांग्रेसी मुख्यमंत्री श्री गुंडूराव की यह योजना थी और जनता दल के मुख्यमंत्री श्री हेगड़े ने इसे स्वीकृति दी थी। 7 वर्ष से अहिंसक लड़ाई चल रही है। उच्चतम न्यायालय ने स्थगन आदेश दिया, लेकिन वन विभाग ने आदेश का उल्लंघन किया। 72 विधायक और वनमंत्री के साथ द्वितीय कंजर्वेटर ऑफ फारेस्ट ने राय दे दी है कि उपरोक्त कंपनी जिसका नाम 'कर्नाटक पल्पवुड लिमिटेड' है, को दी गई सार्वजनिक भूमि की लीज समाप्त की जाए। लेकिन कर्नाटक का मंत्रिमंडल उपरोक्तानुसार प्रस्ताव पास करने में महीनों से हीले हवाले कर रहा है। सरकारें कितनी संवेदनहीन होती हैं इसका यह एक उदाहरण है।

उत्तराखंड से लेकर कन्याकुमारी तक और सौराष्ट्र या कच्छ से लेकर उड़ीसा के बलियापाल या उत्तर-पूर्वी प्रदेशों तक स्वयं स्फूर्त जनआंदोलन उभर रहे हैं। ये आंदोलन इसलिए चल रहे हैं कि जल, जमीन और जंगल, जो उनके जीवनाधार हैं, उनसे छीने जा रहे हैं, ये छीने जा रहे हैं विकास और तरक्की के नाम पर। इसका लाभ उठा रहा है 10 करोड़ वाला आधुनिक योरपीय इंडिया और कीमत चुका रहा है 75 करोड़ वाला देशीय भारत या हिन्दुस्तनवा। प्राकृतिक संपदा पर कब्जा किसका रहे, यह बड़ी गहरी लड़ाई है तथा इसे 'बाहरी, 'विदेशी', 'नक्सलवादी' ऐसे छिछले नारों से धूमिल करने की कोशिश की जाती है।

आलीराजपुर में भी यही हो रहा है। जीवनाधार सुरक्षित रहे, इसकी लड़त चली। इस लड़त के दौरान वहां जागृति पैदा हुई है। सोंडवा ब्लॉक में जहां 'खेडूत मजदूर चेतना संगठ' काम कर रहा है, इसका सबूत दिखाई दे रहा है। ग्राम मथवाड़ की महिला रोजली से जलाऊ लकड़ी के एवज में वनकर्मी ने मुर्गी मांगी, तो उसने साफ इंकार करते हुए कहा कि मैंने कानून की जानकारी ले ली है। "सिरबोझ लकड़ी की छूट है।" ग्राम ककराना के कुंजी को जब घास काटने के लिए बेगार में बुलाया गया तो उसने मुफ्त में काम करने से मना कर दिया। बस में आगे की सीट पर बैठे अवलसिंह को पेंट-कमीज पहने बजारिए ने बांह खीचते हुए उठाने की कोशिश की तो उसने उठने से इंकार कर दिया तथा 'भीलड़ा' शब्द से अपमानित करने पर गहरी आपत्ति की। केलदी, वाकनेर, मथवाड़ के सरपंचों ने सचिवों से सांठगांठ करके पेयजल-योजना के 50.000 डकार लिए थे। गांव वालों ने दबाव डाला और योजना के रुपए वापस करवाए।

रोजली, कुंजी और अवलसिंह जैसे कई लोग इस क्षेत्र में पैदा हो गए हैं। जिन लोगों को मुर्गी और बकरा समझा जाता था, वे आदिवासी अपनी अस्मिता का अहसास करने लगे हैं और पुलिस, पटवारी और फारेस्टर की जुल्म ज्यादतियों के खिलाफ उठ खड़े हो रहे हैं। जिन्हें वे अपना चारागाह और शिकार समझते थे, वे अब अपने 'जीने के अधिकार' के लिए उठ खड़े हो रहे हैं और कानून की बात करने लगे हैं। इससे घबड़ाकर 'सफेद पोश' नक्सलवाद के नाम से हौव्वा खड़ा कर रहे हैं।

केवल व्यक्तिगत अधिकारों के लिए ही नहीं, अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए सामूहिक प्रयासों में भी ये जुट गए हैं। अठ्ठा गांव में वर्षों से खेत की मिट्टी बहती जा रही थी। संगठ की प्रेरणा से रूपसिंह आगे आया। कोई भी व्यक्ति अकेला अपने खेत में पाला नहीं बांध सकता था। गांव वालों ने मिलकर योजना बनाई, सभी ने एक-दूसरे के खेत पर काम किया और करीब 500 पाले बांधे। 25 गांवों के लोगों ने अपने आस-पास के जंगलों को बचाने का बीड़ा उठाया और अनेक पेड़ लगाए। साहूकारों के ऋण से बचने के लिए अपना-अपना हिस्सा इकट्ठा किया गया और 'गुल्ला' प्रथा चलाई गई। ये केवल उदाहरण हैं। इस तरह की और भी प्रक्रियाएँ चल पड़ी हैं, जिनका नेतृत्व कर रहा

है, आदिवासियों में से ही निकला, एक युवक जिसका नाम है शंकर।

सोंडवा क्षेत्र में यह जागृति आई कैसे ? यह पूछे जाने पर संगठन में काम कर रहे अमित और जयश्री ने कहा कि "पैंट कोट वाले', 'धोगड़िया' (पुलिस) को देखकर ही भाग जाने वाले और राम-राम न करने पर पिट जाने वाले आदिवासी आज अपने हक और सम्मान से जीने की आवाज उठाने लगे हैं और खुद अपने बल पर अपनी तकदीर बदलने के लिए आगे कदम बढ़ा रहे हैं।" अमित ने आगे कहा, "लेकिन यह बदलाव की यात्रा बड़ी कष्टप्रद और दमन से भरपूर रही है।"

1982 में कुछ नवजवान अट्टा में आए। इन नवजवानों के मन में विश्वविद्यालय की कुर्सी पर बैठे-बैठे हो रहे शोध कार्यों से वितृष्णा थी, इसलिए उन्होंने लोगों की आवश्यकता के अनुरूप कोई सार्थक शोध का मन बनाया। उन्होंने तिलोनिया की प्रसिद्ध संस्था 'समाज कार्य एवं अनुसंधान केंद्र' की मदद ली और ये लोग सुदूर गांव अट्टा में जाकर बस गए। सफेद पोशों की तरह ये लोग अलग-थलग नहीं रहे, बल्कि वे उनके बीच काम करते, गाते, नाचते और इतना ही नहीं, उन्होंने अपना खान-पान और वेशभूषा भी बहुत कुछ उनके जैसी ही बना ली। लोग इनके साथ संगठन को बनाने और अपने हक की लड़ाई लड़ने में जुट गए। शोषक वर्ग कैसे यह बर्दाश्त कर सकता था, विशेषकर वे वनकर्मी जो बीसियों वर्षों से अतिक्रमित जमीन को कानूनी करने में इसलिए रुचि नहीं रखते थे कि उनकी चौथ वसूली का जरिया ही बंद हो जाएगा। नवजवानों पर 40-40 झूठे मुकदमे लगाए गए, जिलाबदर करने की कोशिशे हुई, नक्सलवादी होने का दोष मढ़ा गया। आदिवासी बुरी तरह पीटे गए, उन पर गोलियाँ चलाई गई और अनेकों तरह से आतंक फैलाने का प्रयास किया गया।

झाबुआ के नवापाड़ा-युवाग्राम में भी श्री नायर और नफीसा अपने 'कैरियर' को तिलांजलि देकर पहाड़ियों पर एक कुटिया बनाकर रह रहे हैं और आदिवासियों के बीच काम कर रहे हैं। यह स्थान माछलिया घाट के नाम से जाना जाता है तथा यह अपराधियों का क्षेत्र माना जाता है। रचनात्मक कामों की अनुकरणीय शुरूआत इन युवकों ने वहां की है। श्री रवि जो इनके साथ रचनात्मक कामों में हाथ बंटाते थे, सोंडवा क्षेत्र में घूम रहे हैं। श्री रवि ने कहा "हमारे गांव में योजना हमारी मजूरी से बने।" इसमें नक्सलवाद कहाँ है ? 1988 की राष्ट्रीय वन नीति स्वयं लोकभागीदारी को बढ़ाने की बात करती है।

इसी क्षेत्र में काम कर रहे नवजवान इंजीनियर राहुल ने इस संगठन के इतिहास की चर्चा करते हुए बतलाया कि अपने अनुभव के दौरान हमने दो बातें समझी। एक यह कि दातून से लेकर घर बनाने, खेती करने, जानवरों को चराने और देवपूजा तक के लिए आदिवासी जंगल पर निर्भर हैं, इसलिए उनकी जान वनकर्मियों की हथेली में है। दूसरी यह कि कानून कायदों की गैर-जानकारी की वजह से वे सरकारी कर्मचारियों और

साहूकारों के शोषण के शिकार होते रहे हैं। जो लोग जंगल के अधिकारी रहे हैं, वे ही आज अतिक्रमणकारी कहे जा रहे हैं। इसके इतिहास की चर्चा करते हुए इसी क्षेत्र में काम कर रही चितरूपा ने बतलाया कि "क्रांति दिमागों के बदलाव से आती है, इसी की कोशिश हम कर रहे हैं।"

एक ओर जहां समाज में स्वार्थ और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हिंसा और संकीर्णता बेतहाशा फैल रही है। राजनीति और सामाजिक बड़ी-बड़ी संस्थाएं या तो मूकदर्शक हैं या स्वार्थ में लिप्त हैं। ऐसी भयावह और निराशाजनक स्थिति में भी जगह-जगह नवजवान निकल पड़े हैं और बेजुबान, असहाय और पीड़ित लोगों के बीच काम कर रहे हैं। ये ही देश की आशा हैं। यदि हमने इस बात को नहीं पहचाना और उपरोक्त उभरते हुए बुनियादी जन आंदोलन कुचल दिए गए तो देश को हिंसा की भट्टी में जल जाने से कोई नहीं बचा सकेगा।

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 5-9-91

एक मौत से लड़ाई खत्म नहीं होगी

सन् 1974 में बिहार में स्वर्ण रेखा बहुउद्देश्यीय परियोजना शुरू की गई थी। इसके अंतर्गत स्वर्ण रेखा नदी तथा खड़किया नदी पर दो बड़े बाँध तथा अन्य योजनाएँ प्रस्तावित हैं। ये बाँध छोटा नागपुर के सिंहभूमि के क्षेत्र में बनाए जा रहे हैं, जो वन और खनिज की दृष्टि से सबसे अधिक धन सम्पदा के क्षेत्र हैं। इन बाँधों के कारण 75 हजार एकड़ जमीन छिन जाएगी तथा इतनी ही संख्या में लोग उजड़ जाएँगे। 74 में जैसे ही परियोजना शुरू हुई थी इसका विरोध शुरू हो गया था। स्वर्णरेखा नदी पर बाँध चांडिल नामक कस्बे में बन रहा है। इस कस्बे के ब्लॉक कार्यालय को मार्च 1975 में ही घेरा गया था, लेकिन बाद में आपातकाल के कारण काम आगे बढ़ गया था। 1978 में एक लाख लोगों ने रैली निकालकर अपना जबर्दस्त विरोध दर्ज कराया था। इसके बाद अप्रैल में आमरण अनशन और सत्याग्रह हुआ। पुलिस ने भारी जुल्म किए, इसके प्रतिकार में 8,000 लोग अनशन हेतु एकत्रित हुए। पुलिस ने अश्रुगैस के गोले फेंके और गोलियाँ चलाई जिसमें चार लोग मारे गये।

इसी तरह की लड़ाई खड़कई नदी पर इचा नामक स्थान पर बन रहे बाँध के खिलाफ भी हुई थी। इस लड़ाई का मुख्य मुद्दा था, जमीन के बदले जमीन, उचित मुआवजा तथा विस्थापितों को रोजगार। 22 मार्च 82 को सुबह 4 बजे पुलिस के जवानों से भरे ग्यारह ट्रकों ने कई गाँवों को बुरी तरह रौंद डाला। सीधू तियू जो इस आंदोलन का नेता था, उसके घर को तबाह कर दिया गया। औरतों को भी बुरी तरह पीटा गया, जिनमें से एक सूरा की माँ बेहोश हो गई थी। गंगाराम कलुंदिया की हत्या भी इसी अत्याचार की एक कड़ी है जो 4 जुलाई 82 को घटी थी।

अत्याचारों एवं दमन के कारण कुछ वर्षों तक संघर्ष दबा रहा लेकिन पिछले जुलाई में आनन्दवन में बड़े बाँधों के खिलाफ बाबा आमटे के नेतृत्व में देश के चुनिन्दा लोगों ने यह संकल्प लिया था कि वे बड़े बाँधों को बनने से रोकेंगे। अनेक कारणों में से यह संकल्प भी एक कारण है जिसने इस क्षेत्र के मैदानी कार्यकर्ताओं में एक नए जोश का वातावरण पैदा कर दिया। अतएव स्वर्ण रेखा बहुउद्देश्यीय परियोजना (स्वरे बहुपरि) के विरोध में संघर्ष की भूमिका बनाने के 10 व 11 सितंबर को सिंहभूमि (बिहार) के चाइबासा में एक सम्मेलन हुआ।

इस सम्मेलन का आयोजन घनश्याम, कुमारचन्द्र मार्डी, शंकरमुंडी तथा श्रीमती अमरजीत कौर के नेतृत्व में लोक जागृति केन्द्र, झारखंड मुक्ति आंदोलन, ईचा खड़कई बाँध विस्थापित संघ एवं महिला संघर्ष वाहिनी ने किया था। निर्णयों के अनुसार एक लाख हस्ताक्षर के साथ एक लाख रुपए एकत्रित किये जाएँगे, सभाएँ होंगी तथा धरने

आयोजित होंगे। आगामी जनवरी में एक विराट प्रदर्शन होगा। मुख्य बात यह है कि ऐसी फिजा बनाई जायेगी कि जो बाँध का समर्थक होगा उसे वोट ही नहीं मिलेंगे। चाईबासा के लोगों से बात करने के दौरान कोल्हान क्षेत्र की चर्चा हुई। इस क्षेत्र की स्वायत्त व्यवस्था के बारे में मुझे कुछ जानकारी तो थी। मुझे यह भी याद आया कि एक 17 वर्ष की ग्रेज्युएट लड़की को सरकार द्वारा पृथकतावादी और देशद्रोही कहा गया था। मेरे द्वारा पूछे जाने पर लोगों ने बड़े आदर से उसके बारे में बताया। इस युवती जोसना के बारे में अखबारों में छपा था, यह बात तीन-चार साल पुरानी होगी।

थोड़ी देर बाद, मैं देखता हूँ कि एक युवती मेरे पास आई तथा वह मुझसे बात करने लगी। वह जोसना ही थी। ऐसा लगा जैसे मैं किसी नजदीकी मित्र से बात कर रहा हूँ। कोल्हान क्षेत्र की 'मुंडा-मान की' सामाजिक व्यवस्था के आदर्श स्वरूप से लेकर उसमें आई गिरावट की चर्चा हुई। जोसना हम लोगों के साथ खड़कपुर (बंगाल) के पास झाड़ग्राम भी गई थी जहाँ झारखण्ड समन्वय समिति का वार्षिक सम्मेलन था। हमारे साथ सीताराम शास्त्री भी थे जो एक समय झारखंड आंदोलन के प्राण रहे हैं। जोसना ने झाड़ग्राम के सम्मेलन में किताबें बेची। बड़ी सरलता से वह किताबों के बंडल उठा और रख रही थी। उस समय मैं सोचता रहा इस सरल और सेवाभावी लड़की को सरकार ने देशद्रोही क्यों कर कहा ? खैर 'कोल्हान' की विशेषता की चर्चा कर लें।

सिंहभूमि में कोल्हान क्षेत्र लोहे की खदानों एवं प्रचुर प्राकृतिक संपदा के लिए प्रसिद्ध है ही उसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं सामाजिक प्रथाएँ हैं जो सामुदायिक जीवन प्रणाली पर आधारित है। इसकी रक्षा करने का एक लम्बा इतिहास इस क्षेत्र के 'नीकू' आदिवासियों का है। हर गाँव का एक मुखिया होता है जिसे 'मुंडा' कहा जाता है। कुछ गाँवों को मिलाकर एक इकाई बनाई गई है उसके मुखिया को 'मानकी' कहा जाता है। जमीन और प्राकृतिक सम्पदा पर व्यक्तिगत मिल्कियत नहीं होती। इनके लाभ का उपभोग सामुदायिक रूप से होता है।

कमोबेश यह स्थिति अँगरेजों के आने के पूर्व सभी वनांचलों में थी। भारत पर कब्जा जमाने के लिए अँगरेजों ने जंगलों पर सरकारी कब्जा एवं जमीनों पर व्यक्तिगत हक बनाना शुरू किया। इन्हें 'दीकू' कहा गया। इसके विरोध में अनेक स्थानों पर आदिवासी विद्रोह हुए थे। कोल्हान क्षेत्र में यह लड़ाई 15 वर्षों तक अंग्रेजों के खिलाफ चली थी। इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख आदिवासी जाति 'हो' है। इस जाति के लड़ाकूपन के कारण इसे **'लड़का कोल'** कहा जाता है। 1831-32 का कोल विद्रोह प्रसिद्ध है, जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे। आखिर 1837 में अंग्रेजों ने इस क्षेत्र पर कब्जा तो जमा लिया था, लेकिन इस क्षेत्र को 'कोल्हान सरकार एस्टेट' के नाम से एक स्वायत्त दर्जा दिया था जो विल्किंसन नियम के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। इस नियम के मुताबिक इस क्षेत्र में सामान्य कानून लागू नहीं होते तथा निर्णय उनकी परंपरागत

व्यवस्थाओं के अनुरूप होते है। रेवेन्यू, न्याय और पुलिस के कई अधिकार मुंडा मानकी व्यवस्था के अंतर्गत हैं। मुख्य बात यह है कि कोई विकास के कार्यक्रम बिना लोगों की स्वीकृति के चलाए नहीं जा सकते।

कोल्हान क्षेत्र के 'नीकू' (इन्डीजीनस) 'दीकू' को बहुत शक की निगाह से देखते हैं। पहले अंगरेज 'दीकू' थे अब वे लोग 'दीकू' हैं जो उन्हें उनकी जमीन और प्राकृतिक संसाधनों से वंचित कर रहे हैं। यद्यपि उनकी पंचायत प्रणाली और जीवन शैली बहुत कुछ टूट-फूट चुकी है, लेकिन जो भी शेष है उसके कारण उनमें लड़ाकूपन अभी भी विद्यमान है। यद्यपि कई मुंडा और मानकी भ्रष्ट हो गए हैं, लेकिन इसके साथ ही वंशानुगत चलने वाले पद के स्थान पर लोगों द्वारा चुने हुए पद बनाए जाने की लहर पैदा हुई है। जब कांग्रेस ने अपनी पंचायत व्यवस्था उन पर थोपी थी तो विद्रोह हो गया था और कांग्रेस को विल्किंसन नियम बरकरार रखना पड़ा था।

ऐसी स्वायत्त सभ्यता के क्षेत्र में बिना लोगों की सहमति के जो 'स्वरे बहु परि' चलाई जा रही है उसके विरोध में संघर्ष बहुत तीव्र हो सकता है। यह संघर्ष बड़े बाँधों के खिलाफ चलाए जा रहे अभियान में मुख्य भूमिका अदा करेगा।

झारखंड आंदोलन का भी सिंहभूमि एक प्रमुख क्षेत्र है। एक तरह से झारखंड आंदोलन उन लोगों को प्रेरित कर रहा है, जो अपने प्राकृतिक संसाधनों से वंचित किये गये हैं या किये जा रहे हैं। बड़े बाँधों के खिलाफ चल रही लड़ाई का भी चरित्र यही है। इस दृष्टि से भी स्वरे बहुपरि के विरोध में जो संघर्ष छिड़ेगा उसका संपूर्ण झारखंड क्षेत्र में व्यापक असर होगा।

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 28-9-88

कार्बाइड की क्रूरता और एक अपहृत सच

भोपाल गैस कांड से पीड़ित लोगों का सही इलाज क्या है, इस बात को लेकर एक लंबे अर्से तक विवाद चला, कुछ स्वयंसेवी संगठनों और डॉक्टरों ने यह मानते हुए कि शरीर में जहर (साइनाइड) ने प्रवेश किया है। सोडियम थायोसल्फेट देने की सिफारिश की, जो साइनाइट की काट 'एंटीडोट' है, तो कुछ बड़े डॉक्टरों, यूनियन कार्बाइड और सरकार ने इसे आवश्यक नहीं माना था, लेकिन भोपाल गैस कांड संघर्ष मोर्चा और जन स्वास्थ्य केंद्र जैसे स्वयंसेवी संगठन इसे जरूरी मानते रहे और यह आरोप लगाते रहे कि कार्बाइड हत्याओं की जिम्मेदारी से बचने के लिए सच को छिपा रही है सरकारी अधिकारियों पर यह आरोप लगे कि वे कार्बाइड को बचा रहे हैं। स्वयंसेवी संगठनों एवं भोपाल मेडिकोलीगल इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर श्री हीरेशचंद्र की ओर से किए गए यह दावे कि शरीर में जहर पहुँचा है की वैज्ञानिकता पर कई सरकारी अधिकारी, डॉक्टर और वैज्ञानिक अनेक प्रश्नचिन्ह लगाते रहे, लेकिन अब 87 के अंत में एक और वैज्ञानिक विश्लेषण सामने आया है। विश्वास किया जाता है कि शरीर में जहर प्रवेश को लेकर अभी तक उठाई गई शंकाएं इससे निर्मूल हो जाएंगी। ज्ञात हुआ है कि यह विश्लेषण उच्चतम न्यायालय को प्रस्तुत कर दिया गया है। गैस पीड़ित लोगों के इलाज में निहित स्वार्थ का विवाद उच्चतम न्यायालय तक पहुँचा है, इसलिए आशा की जाती है कि इस पर उच्चतम न्यायालय का भी शीघ्र ही निर्णय होगा। यह अंतिम विश्लेषण देश की सबसे बड़ी अर्द्ध शासकीय शोध संस्थान आई. सी. एम. आर. (इंडियन कौंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च) द्वारा संचालित शोध पर ही आधारित है, जो ए. आई. आई. एम. एस. (ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेस) ने किया था। प्रतीत होता है कि अब सरकारी अधिकारियों और कार्बाइड के लिए सच को छिपाना बहुत मुश्किल होगा।

अब भी यदि सरकार के पास कोई ठोस आधार हो, जो उपरोक्त खोज को निर्मूल करते हो तो उसे तत्काल वैज्ञानिकों और डॉक्टरों की बैठक बुलाकर अपनी बात स्पष्ट करना चाहिए, अन्यथा उसे तीन वर्ष से चल रहे विवाद को समाप्त कर देना चाहिए तथा लाक्षणिक इलाज बंद करना चाहिए। शरीर में अभी भी जो जहर बचा है, उसे निर्मूल करने की प्रक्रिया तेजी से चलानी चाहिए।

गैस के प्रभावों के संबंध में जो विश्लेषण और खोज आज तक हमारे सामने आए हैं, विशेषतः उपरोक्त अंतिम विश्लेषण, वे कुछ बुनियादी सवाल खड़े करते हैं, जिन पर चर्चा बहुत जरूरी है। (1) यूनियन कार्बाइड मिक गैस के तत्वों एवं उसके कुप्रभावों को छिपाने की दोषी है। इस आधार पर उसकी कानूनी देनदारी क्या होगी ? कार्बाइड पर हर्जाने की रकम का जो दावा प्रस्तुत किया गया है, उसमें क्या इस देनदारी को शामिल

किया गया है ? (2) हमारा लक्ष्य क्या है ? गैस पीड़ितों को मात्र मुआवजा अथवा ऐसी सजा, कि कोई भी बहुराष्ट्रीय कंपनी भविष्य में तीसरी दुनिया के किसी भी राष्ट्र की जिंदगी के साथ खिलवाड़ न कर सके। (3) देश की प्रमुख शोध संस्थान आय. सी. एम. आर. एवं सी. एस. आई. आर. ने क्या पीड़तों में घुसे जहर तथा उससे प्रभावित हुई संरचनाओं पर तत्काल शोध करके सही इलाज को अनुकूल बनाने में सहयोग देने का अपना उत्तरदायित्व निभाया है ? (4) क्या यह सच है कि आय. सी. एम. आर. ने ए. आय. आय. एम. एस. द्वारा संचालित शोध को बीच में ही बंद करके एक महत्वपूर्ण खोज को निरर्थक बनाने की कोशिश की। क्या यह सही नहीं है कि इसी खोज को अन्य अशासकीय वैज्ञनिकों ने आगे बढ़ाया, जिसके फलस्वरूप यह साबित हुआ कि पीड़ितों के शरीर में जहर घुसा है, जो खून में शामिल हुआ तथा जो आज भी विद्यमान है।

बात यह हुई कि ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज (ए. आई. आई. एम. एस.) के विशेषज्ञ डॉ. एम. जी. करमरकर के नेतृत्व में काम कर रही एक टीम ने गैस पीड़ितों में घेंघा रोग के फैलाव के संबंध में खून और पेशाब के तत्वों की जांच करते हुए इसकी भी जांच कर डाली थी कि पीड़ितों के पेशाब में कितना थायोसाइनेट तत्व विद्यमान है।

डॉ. करमरकर की टीम की जांच स्वास्थ्य की दुनिया के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण थी, चूंकि इससे न इलाज के सही निदान की पुष्टि होती थी, बल्कि कार्बाइड की कानूनी जवाबदारी भी स्थापित होती थी। थायोसाइनेट की मौजूदगी इस बात की द्योतक है कि साइनाइड ने शरीर में प्रवेश किया होगा।

जन-स्वास्थ्य केंद्र तो शुरू से ही यह मानकर कि जहर गया है, उसकी काट (एंटीडोट) सोडियम थायोसल्फेट दे रहा था, लेकिन विवाद के कारण यह इलाज सीमित ही बना रहा और 85 में केवल 8 प्रतिशत तथा जून 86 में मुश्किल से 3.5 प्रतिशत को ही इसका लाभ मिला था। टीम ने मार्च 1987 तक काम किया। लेकिन दुर्भाग्य से आई. सी. एम. आर. ने इस जांच को बंद कर दिया शंकाएं उठाई गई थी कि थायोसाइनेट की मौजूदगी के तंबाकू जैसे अन्य कारण भी हो सकते हैं, तो क्या इन शंकाओं का समाधान आई. सी. एम. आर. ने किया ? रिसर्च बंद क्यों किया गया ? क्या इससे यह साबित नहीं होता कि कार्बाइड को साफ-साफ अभयदान देने की गरज से रिसर्च बंद कर दिया गया ?

यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय में पहुंच चुका था तथा सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार द्वारा जनस्वास्थ्य केंद्र को बंद करने के कदम को अनुचित मानकर उसे आरंभ करने के आदेश प्रदान किए थे और सात विशेषज्ञों की एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसको यह उत्तरदायित्व दिया गया था कि वह देखे कि इलाज में किसी प्रकार की कोई बाधा न पड़े। ऐसी परिस्थिति में खोज बंद करने का आई. सी. एम. आर. का यह कदम

आश्चर्यजनक है। इसी संदर्भ में यह बात ध्यान देने योग्य है कि उच्चतम न्यायालय की विशेषज्ञ समिति के सभी सदस्यों ने यह सिफारिश की है कि सोडियम थायोसल्फेट के इंजेक्शन दिए जाए।

समिति के दो अशासकीय सदस्यों डॉ. सद्गोपाल एवं डॉ. सुजीतदास ने इस बात को स्वीकार किया कि थायोसाइनेट प्राप्त होने पर साइनाइड की मौजूदगी का विश्लेषण वैज्ञानिक नहीं था। वैज्ञानिक खोज न हो सकने का प्रमुख कारण सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी माध्यमों का असहयोगात्मक रुख था, फिर भी किसी तरह काम किया गया, आवश्यक वैज्ञानिक प्रक्रियाएं अपनाई गई। ए. आई. आई. एम. एस. ने जहां काम रोक दिया था, उसे आगे बढ़ाया गया। कलकत्ता साइंटिफिक वर्कर्स फोरम के प्रसिद्ध गणितज्ञ सुभाष गांगुली की सेवाएं प्राप्त की गई तथा निष्कर्ष निकाले गए। कहा जाता है कि वैज्ञानिकों एवं स्वास्थ्य की दुनिया में यह एक अकाट्य रिपोर्ट है, जो इस बात को पुष्ट करती है कि पीड़ितों के शरीर में जहर ने प्रवेश किया था। इन दो सदस्यों ने यह रिपोर्ट उच्चतम न्यायालय को प्रस्तुत करने के अलावा प्रधानमंत्री राजीव गांधी को भी भेजी है। खोज का ब्यौरा यहां देने की जरूरत नहीं है। वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को अपनाने के बाद यह परिणाम निकला है कि बच्चों में 25 प्रतिशत एवं बड़ों में 37 प्रतिशत थायोसाइनेट मौजूद है और उसका कारण अन्य वस्तु न होकर जहर ही है। माइक्रोबायोलॉजिस्ट अनिल सद्गोपाल ने एक संभावना यह भी व्यक्त की है कि मिक गैस खुद भी शरीर में अन्य तत्वों से मिलकर जहर का रूप धारण कर सकती है तथा इस संबंध में शोध होना चाहिए। उन्होंने डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट एस्टेब्लिशमेंट का भी हवाला दिया, जहां ऐसी छानबीन हो रही है और ऐसी संभावना प्रकट हुई है। जो भी हो, डॉ. अनिल सद्गोपाल के अनुसार यह बात अब निर्विवाद है कि शरीर में जहर था तथा उसने शरीर की संरचनाओं को प्रभावित किया। उन्होंने यह भी कहा कि इन संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता कि जहर के प्रभाव से भ्रूण में विकृतियाँ पैदा हुई हैं तथा जैविक परिवर्तन हुई हैं। यह भी संभावना है कि कैंसर पैदा हुआ है। स्पष्ट है कि एक लंबे अर्से तक अर्थात पीढ़ियों तक गैस से प्रभावित लोगों को इलाज चलाना होगा। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि जिस सत्य को सरकार को उजागर करना चाहिए था, उसे स्वयंसेवी संस्थाओं को करना पड़ा। सरकारी और अर्द्ध सरकारी संस्थाओं कीओर से सहयोग नहीं मिला। खोजबीन के काम में वर्षों लग गए और गैस पीड़ितों को इसकी कीमत चुकानी पड़ी।

यूनियन कार्बाइड ने इस सत्य को छिपाया है कि लोगों के शरीर में जहर घुसा तथा इस जहर को निर्मूल करने का इलाज भी नहीं बताया। पाठकों को याद होगा कि कार्बाइड यही कहती रही कि मिक गैस खतरनाक नहीं है। यह गैस पानी के साथ मिलकर नष्ट हो जाती है। आंखों और फेफड़ों को सतही नुकसान हुआ है तथा यह खून

में नहीं घुसी है। इस आधार पर उसका यह कहना था कि जहर को निर्मूल करने के इलाज की जरूरत नहीं है। फेफड़ों में नुकसान हो जाने के कारण ही सांस की तथा बहुतंत्रीय विकृतियां पैदा हुई हैं। इसी आधार के कारण अधिकांश स्वास्थ्य अधिकारी केवल लाक्षणिक इलाज (सिम्टोमेटिक) ही करते रहे। कार्बाइड ने यह सत्य कि जहर शरीर में गया है, जानबूझकर छिपाया, क्योंकि, अगर वह इसे स्वीकार कर लेता तो हजारों लोगों को जान से मारने और अपंग कर डालने का अपराध स्थापित हो जाता।

पिछले दिनों सुर्खियों में यह खबर छपी थी कि कार्बाइड और भारत सरकार के बीच समझौता हो रहा है। पर्दे के पीछे से फूटी खबरों से लोगों को यह लगा कि 500-600 करोड़ रुपए में समझौता हो रहा है। अगर समझौता हो जाता तो यह एक बहुत बड़ा मजाक होता। भला हो 'भोपाल गैस कांड संघर्ष मोर्चे' का जिसने विरोध आयोजित किया और राजनीतिक दलों को भी सक्रिय किया। ऐसा प्रतीत होता है कि दबाव के कारण समझौता नहीं हुआ। उसके बाद न्यायालय द्वारा कार्बाइड को 350 करोड़ की अंतरिम राहत दिए जाने के आदेश हुए। कानूनविदों का खयाल है कि 7-8 हजार करोड़ रुपया जुर्माना के बतौर मिल सकता है। सरकार ने तो 4 हजार करोड़ रुपए से कम का ही दावा लगाया है। भारत सरकार ने इस बात का दावा नहीं किया है कि कार्बाइड जोखिम छिपाने की अपराधी है तथा इस कारण उस पर योग्य जुर्माना किया जाना चाहिए। इसके अलावा यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गैस पीड़ित लोगों के इलाज और राहत की जिम्मेदारी ही कार्बाइड की नहीं है, उसकी यह भी जिम्मेदारी है कि जहर के कारण जो शरीर की भीतरी संरचना में परिवर्तन हुए हैं, जिनके कारण लंबे वर्षों तक नई पीढ़ी और शायद आने वाली पीढ़ी का इलाज एवं शोध कार्य करते रहना होगा, उसकी भी जिम्मेदारी कार्बाइड की है। कानूनविदों का कहना है कि इन आधारों के परिप्रेक्ष्य में 3900 करोड़ रुपए का सरकारी दावा पर्याप्त नहीं है, इसे बढ़ाया जाना चाहिए।

अंतरराष्ट्रीय खाद्य संगठन की संहिता के अनुसार भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की यह जिम्मेदारी है कि वे अपने उत्पादन संबंधी खतरों की जानकारी मुहैया करें। कार्बाइड का यह अपराध, जिसने औद्योगिक क्षेत्र की सबसे बड़ी त्रासदी पैदा की है, अक्षम्य है। भोपाल गैस कांड विश्व की महत्वपूर्ण घटना है तथा जो बहुराष्ट्रीय कंपनियां खतरनाक कामों में लगी हुई हैं, उन पर कठोर कानूनी कार्रवाई की जानी चाहिए। इस संबंध में भारत से यह अपेक्षा है कि वह ऐतिहासिक भूमिका अदा करे, ताकि तीसरी दुनिया की जिंदगी को खतरे में डालने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियां भविष्य में विकासशील देशों के जीवन के साथ खिलवाड़ न कर सकें।

साभार - नईदुनिया, इन्दौर, 18-1-88

लोक स्वतंत्रता संगठन जरूरी क्यों ?

पिछले अप्रैल 19 को करीब दो हजार किसान अरवल में इकट्ठा हुए थे। उस स्थान पर लाल, नीले और सफेद रंग का एक बैनर लगा हुआ था जो घोषणा कर रहा था 'इन्डियन पीपुल्स ह्यूमन राइट्स कमीशन के ट्राइब्यूनल द्वारा अरवल पुलिस गोली कांड की सुनवाई।' लोग अपनी साक्ष्य देने वहां जमा हुए थे। यह वही स्थान था जहां एक वर्ष पूर्व 'किसान मजदूर संग्राम समिति' की ओर से एक सभा हुई थी और सभा पर पुलिस द्वारा अंधाधुंध गोली चलाई गई थी। इस गोलीगांड ने जलियांवाला बाग की याद दिलाई थी।

जांच समिति (ट्राइब्यूनल) के सदस्य के रूप में गुजरात उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री जी. एस. पौट्टि एवं हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री टी. यू. मेहता उस दिन लोगों की साक्ष्य लेने वहां पहुंचे थे। पुलिस गैर हाजिर रही, तो दोनों न्यामुर्ति उनकी साक्ष्य लेने थाने पर ही पहुंच गए थे।

'इंडियन पीपुल्स ह्यूमन राइट्स कमीशन' ने पूर्व न्यायाधीशों की एक जांच समिति बनाई है, जिसमें गुजरात, हिमाचल प्रदेश तथा आंध्रप्रदेश के उच्च न्यायालयों के पूर्व न्यायाधीश सदस्य हैं। इन्हीं सदस्यों में से उपरोक्त दो सदस्य जांच के लिए अरवल गए थे। इसी वर्ष पिछली जनवरी में ही दिल्ली में जागरूक नागरिकों और पत्रकारों के बीच 'ह्यूमन राइट्स कमीशन' के गठन की घोषणा हुई थी। इस कमीशन के संस्थापक सदस्यों में प्रो. ए. आर. देसाई, प्रो. रोमीला थापर, वी. एम. तारकुंडे, असगर अली इंजीनियर, श्याम बेनेगल, ओमपुरी आदि हैं।

सरकार के पास राष्ट्रीय सुरक्षा कानून एक ऐसा हथियार है कि जिसके बल पर वह नागरिक आजादियों को आसानी से कुचल सकती है। लेकिन उसके बाद अब सरकार ने कुछ और अधिकार अपने हाथ में ले लिए हैं, जिनका दुरुपयोग होने पर मानव अधिकारों के लिए जबर्दस्त खतरा पैदा हो गया है। 1985 में बने आतंकवाद विरोधी कानून के जरिये पुलिस को और अधिक कठोर अधिकार मिल गए हैं। अशांत क्षेत्र कानून के तहत तो पुलिस सन्देह के आधार पर गोली भी चला सकती है। डाक को सेंसर करने का अधिकार भी सरकार ने ले लिया है। इतना ही नहीं अब तो एक संशोधित कानून के जरिये जांच रपट संसद को बताने की जबाबदारी से भी सरकार को मुक्ति मिल गई है। बिहार सरकार अध्यादेशों के द्वारा ही चलाई जाती है। पूना के डॉ. दीवानचंद्र वाधवा ने इसके खिलाफ उच्चतम न्यायालय में याचिका पेश की थी। उच्चतम न्यायालय ने बिहार के कदम को 'संविधान के साथ धोखा' निरुपति किया, किन्तु फिर भी बिहार सरकार अपनी मनमानी पर आमादा है। जिन उद्देश्यों के लिए

कानून बनाये जाते हैं, उनके विपरीत उनका उपयोग करना, लोगों को आंतकित करना तथा लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और परम्पराओं को तोड़ना एक आम बात हो गई है। इस कारण लोगों में गहरी चिन्ता व्याप्त हो गई है। यही वजह है कि न्यायविद, कानून शास्त्री, समाजशास्त्री और पत्रकार नागरिक आजादी के संघर्ष में आगे आ रहे हैं।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भी जागरूक नागरिकों ने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए संगठन बना रखे हैं, जो समय-समय पर अपनी रपटें देते रहते हैं तथा अधिकारों की आवाज उठाते रहते हैं। आंध्र में 'आंध्रप्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी', पश्चिम बंगाल और पंजाब में 'एसोसिएशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स' महाराष्ट्र में 'कमेटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स' तथा बिहार पी.यू.सी. एल. प्रमुख संगठन हैं, जो अधिक सक्रिय हैं।

'इंडियन पीपुल्स ह्यूमन राइट्स कमीशन' अभी-अभी अस्तित्व में आया है, लेकिन इसके पूर्व राष्ट्रीय स्तर पर 'पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज' (लोक स्वतंत्रता संगठन) कई वर्षों से नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए काम कर रहा है। यह अक्टूबर 1976 में स्थापित हुआ था। श्री जयप्रकाश नारायण ने इसकी स्थापना में विशेष रुचि ली थी। इसके प्रथम अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री वी. एम. तारकुंडे थे। समाजशास्त्री श्री रजनी कोठारी भी इसके अध्यक्ष रह चुके हैं। वर्तमान में न्यायमूर्ति राजेन्द्र सच्चर इसके अध्यक्ष हैं। कुछ वैचारिक मतभेदों के कारण पी.यू.सी. एल. के कुछ सदस्यों ने कानूनविद गोविन्द मुखौटी के नेतृत्व में 'पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रोटिक राइट्स' स्थापित कर ली थी। लेकिन दोनों ही राष्ट्रीय संगठन एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हुए काम कर रहे हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में फैले दंगों की जांच करना है। इस जांच की रपट दोनों संगठनों ने बहुचर्चित पुस्तक 'दोषी कौन' के नाम से प्रकाशित की थी, जिसे तत्कालीन पंजाब तथा मध्यप्रदेश सरकार ने जब्त कर लिया था तथा जिस पर संसद में बड़ा हंगामा मचा था।

पुलिस मुठभेड़, काले कानूनों, पर्यावरण, प्रदूषण और मानव अधिकारों के कई महत्वपूर्ण मामलों पर पी.यू.सी.एल. अथवा पी.यू.डी.आर. की रपटें प्रकाशित हुई हैं जो देश-विदेश में चर्चित हुई हैं। 80 के दशक के पूर्वार्द्ध तक उच्चतम न्यायालयों की यह परम्परा थी कि जो पीड़ित था वही अदालत के दरवाजे खटखटा सकता था। इस कारण अनेकों असहाय एवं मजलूम अदालत की पहुंच से दूर ही रह जाते थे। इन संगठनों के अथक प्रयास से अब न्याय इतिहास में एक नया आयाम जुड़ गया है, तथा अब कोई भी नागरिक किन्ही भी पीड़ित वर्गों के लिए याचिका लेकर अदालतों से न्याय मांग सकते हैं। बंधुआ मजदूर तथा झोपड़पट्टी के मानव अधिकारों के मामलों में अदालती फैसले नए आयाम हैं।

मध्यप्रदेश के पश्चिम हिस्से में पी.यू.सी.एल.- म.प्र. तथा पूर्वी हिस्से में पी.यू.सी.एल. एंड डी.आर के नाम से संगठन काम कर रहे हैं। दोनों का संबंध राष्ट्रीय स्तर पर पी.यू.सी.एल. से है। इन संगठनों ने मुख्यरूप से बस्तर में पुलिस जुल्म दल्लीराजहरा एवं बालाघाट मे मजदूरों पर मालिकों के अत्याचार, नागदा के बिड़ला कारखाने के प्रदूषण तथा होशंगाबाद में आदिवासी मजदूर संगठन के दमन पर अपनी रपटें प्रकाशित की हैं तथा भोपाल गैस कांड संघर्ष मोर्चे पर हुए दमन का विरोध किया है।

प्रसिद्ध कवि भवानी मिश्र पी. यू. सी. एल. के अध्यक्ष रहे हैं तथा उज्जैन के प्राचार्य श्री कौशल प्रसाद मिश्र मंत्री थे। दोनों की ही मृत्यु हो चुकी है तथा डॉ. अनिल सद्‌गोपाल इस समय कार्यवाहक अध्यक्ष हैं। पी. यू. सी. एल. का राज्यस्तरीय सम्मेलन इंदौर में 9-10 मई 87 को होने जा रहा है। इस प्रदेश में नागरिक अधिकारों की लड़ाई उतनी सशक्त नही है, जितनी महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश तथा अन्य प्रान्तों में हैं। इस लड़ाई को अधिक तेज करने तथा संगठन को सुगठित करने के लिए कोशिशें हो रहीं है।

नागरिक अधिकारों के लिए लड़ने वाले संगठनों का क्षेत्र आज बहुत व्यापक हो गया है। वे अब न केवल नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं, बल्कि औद्योगिक सभ्यता एवं पर्यावरण तथा जल के प्रदूषण से उत्पन्न खतरों से भी मानवजाति को बचाने के लिए आगे आ रहे हैं। इस प्रदेश के मुकाबले अन्य प्रान्तों में पूर्व न्यायाधीश, वकील, पत्रकार और बुद्धिजीवी इस काम में हाथ बंटाने अधिक तादाद में आगे आ रहे हैं।

साभार- सप्रेस

आर्थिक गुलामी के विरोध में उभर रही हैं नई शक्तियाँ

अस्सी के दशक के शुरू होते ही आर्थिक नीतियों में जो मोड़ इस देश में आया था तथा जिसे वर्तमान प्रधानमंत्री एवं वित्तमंत्री ने खुलकर सामने रख दिया, उसकी प्रतिक्रिया में विरोध के स्वर उभर रहे हैं। वामपंथी मैदान में हैं तो दक्षिण पंथी दल भी पीछे नहीं रहना चाहते। भाषाई, नस्लीय, क्षेत्रीय और धार्मिक भावनाओं को उभाड़ने वाले दलीय मुद्दों के धुंध में से ही चलो, इस बुनियादी सवाल पर चहल-पहल तो प्रारंभ हुई। लेकिन ये शक्तियां अपनी खोई हुई विश्वसनीयता के बीच कितनी उभर पाएंगी और क्या वे सचमुच गहराई तक पैठ सकेंगी, यह तो अभी देखना है; लेकिन इसी बीच कुछ वैकल्पिक शक्तियां उभर रही हैं।

विश्व बैंक तथा विनाशकारी अंतरराष्ट्रीय सहायता अभियान द्वारा नर्मदा घाटी के एक प्रमुख कस्बे बड़वानी में आयोजित संगोष्ठी ने यह निर्णय लिया कि वह वर्तमान आर्थिक नीतियों एवं डंकल प्रस्ताव के विरोध में राष्ट्रीय समन्वय द्वारा दिल्ली में आगामी 3 मार्च को आयोजित रैली में हिस्सेदारी करेगा। अभियान के प्रमुख अभियानकर्ताओं ने राष्ट्रीय समन्वय समिति के प्रमुखों के साथ मिलकर यह भी तय किया कि आर्थिक नीतियों के विरोधी शोर में वैकल्पिक आर्थिक नीतियों एवं वैकल्पिक विकास की पद्धतियों का विचार ओझल न हो जाए, इसकी चौकीदारी का काम उन्हें ही करना होगा जो इस मुद्दों के साथ जूझ रहे हैं। इस दृष्टि से यह सुझाव मान्य हुआ कि आर्थिक नीतियों एवं डंकल विरोधी स्वर के साथ रैली में लोग स्थानीय बीजों को भी प्रदर्शित करते हुए चलेंगे। आजादी के आंदोलन में गाँधी का चर्खा प्रतीक बन गया था, बीज को लेकर यह तलाश जारी है कि वह विदेशी लूट और आत्मनिर्भर जीवन का प्रतीक बन सके।

उस नर्मदा घाटी में जहां सरदार सरोवर जैसे विशालकाय बांध के विरोध में छिड़े सशक्त संघर्ष ने विश्व बैंक को घुटने टिकाए वहां अभियान द्वारा 20 से 22 जनवरी तक आयोजित उक्त संगोष्ठी का एक विशेष महत्व है। भारी-भरकम विदेशी सहायताओं पर आधारित परियोजनाओं का देश के अन्य हिस्सों में विरोध कर रहे समूहों के लिए यह एक प्रेरणा स्थल है। लेकिन इस संगोष्ठी का आयोजन कर रहे अधिकांश लोग कुछ स्वयंसेवा संगठनों से जुड़े बुद्धिजीवी थे। यद्यपि ये कार्यकारी बुद्धिजीवी थे जो मैदानी लोगों के साथ बैठकर विचार-विमर्श में लगे थे। एक सुखदाई कड़ी यह थी कि इसके ठीक पहले 17 से 19 जनवरी तक पश्चिम निमाड़ में बड़वानी से कुछ ही दूर सेंधवा में आदिवासी मुक्ति संगठन द्वारा एक विशाल आदिवासी सम्मेलन हुआ था। सुश्री मेधा पाटकर और बाबा आमटे के अलावा अन्य कई लोगों की भी दोनों ही आयोजनों में भागीदारी थी। इस कड़ी का अपने आप में बड़ा महत्व है। सेंधवा में आठ-दस हजार

आदिवासियों ने अपने सम्मेलन के जरिए अपनी पहचान को मुखर करने एवं अस्मिता को बनाए रखने का संकल्प किया तो बड़वानी में करीब 55 संगठनों के कार्यकारी बुद्धिजीवियों ने इस बात की तलाश की कि वे कैसे देश की संप्रभुता एवं स्वाधीनता की रक्षा कर सकते हैं। असल में बुद्धिजीवियों की तलाश निरर्थक है जब तक कि उनके साथ सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित जन-बल न हो और जन-बल की सार्थकता के लिए भी जरूरी है कि बुद्धिजीवी साथ चलें। उपरोक्त कड़ी इसी महत्व की बात को जताती है।

निमाड़ के अलावा म.प्र. के महाकौशल और छत्तीसगढ़ तथा महाराष्ट्र, राजस्थान और गुजरात के आदिवासी भी इस सम्मेलन में आए थे जो सेंधवा से 11 कि.मी. दूर स्थित कुंजरी गाँव में संपन्न हुआ। सम्मेलन के अंतिम दिन लोग कुंजरी से पैदल मार्च करते हुए सेंधवा पहुंचे। सेंधवा के लिए यह सुखद आश्चर्य था, जब हजारों आदिवासी अपने परंपरागत हथियार ढोल, मजीरा आदि लेकर अपनी विभिन्न वेशभूषा में नाचते-गाते सेंधवा की सड़कों से गुजरे। मध्यम श्रेणी में एक आम मान्यता यह है कि आदिवासी संगठित हो गए तो वे उनके मकानों को छीन लेंगे, यह भी कि वे उच्छृंखल हैं। ऐसी सभी मान्यताओं को तोड़ते हुए एक शालीन सैलाब सेंधवा की सड़कों से गुजरा जिसने अपनी ताकतवर आवाज से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आह्वान किया कि वे भारत छोड़ें। परंपरागत राजनीति के लिए यह एक विचारणीय घटना है।

इसी इलाके के आदिवासी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री खाज्या नायक की शहादत की याद में ग्राम कुंजरी में पंडाल बनाया गया था जिसमें सम्मेलन हुआ था। एक प्रस्ताव के जरिए इस बात की व्याख्या करते हुए कि किस तरह अँगरेजी राज ने उन्हें उनके प्राकृतिक संसाधनों से वंचित करना शुरू किया। यह बतलाया कि आजादी के बाद इन पिछले 47 वर्षों में बाँधों, खदानों, बिजली के घरों, अभयारण्यों एवं शहरीकरण की योजनाओं के सबसे अधिक शिकार आदिवासी ही हुए हैं। जिनकी आज सुरक्षा, अस्मिता और संस्कृति ही खतरे में पड़ गई है। यह भी कहा गया है कि नई आर्थिक नीति में कल्याणकारी योजनाओं (शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, सार्वजनिक वितरण प्रणाली) की कटौती का असर भी सबसे अधिक उन्ही पर होगा। आदिवासी जागृति केंद्र महाराष्ट्र के शरद कुलकर्णी जैसे बुद्धिजीवियों की भागीदारी रही, लेकिन सम्मेलन का संचालन पूर्णतया आदिवासियों के ही हाथ में था। आदिवासी वनराज भाई के द्वारा स्वागत भाषण, आदिवासी सूमली बाई द्वारा उद्घाटन चर्चाओं में आदिवासियों की सक्रिय भागीदारी और शहीद खाज्या का सम्मान उस विचार का द्योतक है जिसके बल पर आदिवासियों में आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और गौरव का विकास संभव हो सकेगा। इन सबके पीछे युवाकर्मी विजय और निकुंज की सूझबूझ है जो अपना कैरियर छोड़कर गत दो-तीन साल से इस क्षेत्र में आदिवासी चेतना एवं संगठन के काम में लगे हैं।

राजनीतिक दलों के बाहर इस देश में एक गैर दलीय राजनीतिक शक्ति की

प्रक्रिया चल रही है। मेधा पाटकर के नेतृत्व में राष्ट्रीय समन्वय उसका एक चिन्ह है। इस सम्मेलन ने पश्चिमी म.प्र. में चल रही इस प्रक्रिया को मजबूत किया है। इस क्षेत्र के नर्मदा बचाओ आंदोलन, एकता परिषद्, आदिवासी मुक्ति संगठन और खेडूत मजदूर चेतना संगठन का समन्वय और अधिक मजबूत हुआ है।

बड़वानी में हुई संगोष्ठी में अर्थशास्त्री दिलीप स्वामी ने एक तर्कपूर्ण, तथ्यों पर आधारित विस्तृत भाषण देते हुए स्पष्ट किया कि वर्तमान आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप जो आधुनिकीकरण होगा उसमें विदेशी कंपनियाँ लाभान्वित होंगी तथा भारत के मजदूर बेकार हो जाएँगे। ऊर्जा के क्षेत्र में किए जा रहे दावों के संबंध में उन्होंने बतलाया कि विदेशों में मुश्किल से 6 प्रतिशत ब्याज मिलता है जबकि हमारे देश में विदेशी कंपनियाँ 17 प्रतिशत तक लाभ कमाएँगी। यह भी तय हुआ है कि यह लाभ उन्हें डॉलर में दिया जाएगा। इसके पूर्व किसान आदिवासी संगठन, केसला (होशंगाबाद) के सुनील ने गैट समझौते का विस्तृत विश्लेषण किया और बतलाया कि व्यापार, कर्ज, विदेशी कंपनियाँ और विदेशी टॅकनालॉजी लूट के चार प्रमुख माध्यम हैं। श्री सुनील ने पेटेंट के कारण खेती की गुलामी का जिक्र करते हुए बतलाया कि गैट के अंतर्गत बनने वाला विश्व व्यापार संगठन एक सुपर स्टेट बन जाएगा। इन भाषणों के परिप्रेक्ष्य में लंबी चर्चाएँ हुईं, जिनमें संशयों के दायरे उभरकर सामने आए। बार-बार यह सवाल लोगों को कचोटता रहा कि विदेशी सहायता, विदेशी तकनीक पर निर्भरता और संचार माध्यमों द्वारा सांस्कृतिक आक्रमण के रहते नई सभ्यता और नई विकास की पद्धति का विकास कैसे होगा ? जीवन शैली भी बदलना होगी, ये सवाल उभरे। लेकिन एक बात बहुत स्पष्ट नजर आई कि केवल बाहरी पूँजी के आगमन का विरोध निरर्थक और नकारात्मक होगा, जब तक कि आत्मनिर्भर विकास की पद्धतियों के लिए भी जद्दोजहद नहीं होती। यही वह सोच है जो मैदान में काम कर रहे जनसमूहों का राजनीतिक दलों से एक अलग चरित्र बनाता है। इसी आधार पर यह सोचा गया कि 3 मार्च को दिल्ली में होने वाला प्रदर्शन जहाँ 13 अप्रैल का डंकल प्रस्ताव पर भारत द्वारा किए जा रहे हस्ताक्षर का विरोध करेगा (13 अप्रैल को शर्म दिवस के रूप में मनाया जाएगा।) वही यह भी जताएगा कि विकास की वर्तमान पद्धतियाँ ही जनविरोधी हैं और नाशवान हैं। देशी पूँजी भी विनाशकारी विकास पद्धतियाँ चला रही है।

इस स्पष्ट नजरिए का कारण वे अनुभव हैं जो उन संगोष्ठियों में प्राप्त होते हैं जो मैदानी समूहों के साथ मिलकर आयोजित की जाती हैं। उपरोक्त संगोष्ठी में नेपाल से आए गोपी उपरेती, प्रमोद पराजुली और अर्जुन कार्की ने वहाँ अरूण नदी पर एक बड़े बाँध बनाए जाने का जिक्र करते हुए बतलाया कि इसके फलस्वरूप पर्यावरण का भयंकर विनाश होगा जो नेपाल के साढ़े चार लाख लोगों के जीवन में खलल डालेगा। नेपाल के कुल बजट का दुगना रुपया इस बड़ी योजना पर खर्च होने वाला है। करीब 25 वर्ष में

ग्लेशियर फूटकर भयंकर बाढ़ लाता है। बाँध बनने के पूर्व इसका अध्ययन अनिवार्य है, लेकिन देशीय और विदेशी पूँजी इसकी परवाह नहीं करती। जहाँ उत्तरी हिमालय की चर्चा हुई वहीं केरल से आए नेशनल फिश वर्कर्स फोरम के विजयन ने बतलाया कि किस तरह ट्रालर्स के आक्रमण ने लाखों मछुआरों की रोटी छीन ली है। निर्यात के कारण मछली के दाम बढ़ गए हैं। आदमी के लिए मछली दूभर हो गई है, लेकिन इसका पावडर बनाकर बिल्लियों, कुत्तों और मुर्गियों को खिलाया जा रहा है।

उन करोड़ों लोगों की कहानियाँ जब सामने आती हैं, जो देशहित और विकास के नाम उजाड़े और उखाड़े गए हैं, तब यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि विदेशी ताकतें देशीय ताकतों के साथ साँठगाँठ करके गरीबी की रेखा या उसके नीचे जी रहे लोगों का अपने उपनिवेश की तरह शोषण करते हैं। इसका अहसास जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे तथाकथित विकास से पीड़ित जनसमूह उठ खड़े हो रहे हैं। राजनीतिक दल उन्हें अभिव्यक्ति नहीं दे रहे हैं क्योंकि कमोबेश वे उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो शोषक वर्ग से जुड़े हुए हैं। अतएव देश में गैर दलीय राजनीतिक शक्तियाँ उभर रही हैं। साथ ही वे शक्तियाँ भी हैं जो वैकल्पिक विकास एवं आत्मनिर्भर जीवन शैलियों के रचनात्मक निर्माण कार्यों में लगी हैं। इन्हीं शक्तियों को एक-दूसरे के नजदीक लाने का काम राष्ट्रीय समन्वय समिति कर रही है। इस समिति के साथ जन-आंदोलन समन्वय समिति, नर्मदा बचाओ आंदोलन, आजादी बचाओ आंदोलन, जनविकास आंदोलन, नेशनल फिश वर्कर्स फेडरेशन, चिलका बचाओ आंदोलन, नेशनल कंस्ट्रक्शन वर्कर्स यूनियन, सोशलिस्ट फ्रंट, भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन, गंगा मुक्ति संगठन, शोषित जन आंदोलन, भारत जन आंदोलन, हिमालय बचाओ आंदोलन, कर्नाटक राज्य रैयत संघ और जन विज्ञान आंदोलन जुड़ गए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी वैकल्पिक शक्ति उभरे जो चुनावी राजनीति से दूर रहे, लेकिन फिर भी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक धरातलों को प्रभावित करती रहे।

(सप्रेस)

साभार- नईदुनिया, इंदौर

अध्ययन केन्द्र बड़वानी

इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें.....

इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें
जिन्दगी आंसुओं में नहायी न हो
शाम सहमी न हो, रात हो न डरी
भोर की आंख फिर डबडबायी न हो।

सूर्य पर बादलों का न पहरा रहे
रोशनी रोशनाई में डूबी न हो
यूं न ईमान फूटपाथ पर हो खड़ा
हर समय आत्मा सबकी ऊबी न हो
आसमां में टंगी हों न खुशहालियां
कैद महलों में सबकी कमाई न हो।
इसलिए राह.....

कोई अपनी खुशी के लिए गैर की
रोटियां छीन ले हम नहीं चाहते
छीटकर थोड़ा चारा कोई उम्र की
हर खुशी बीन ले हम नहीं चाहते
हो किसी के लिए मखमली बिस्तरा
और किसी के लिए एक चटाई न हो।
इसलिए राह.....

अब तमन्नायें फिर न करें खुदकुशी
ख्वाब पर खौफ की चौकसी न रहे
श्रम के पांवों में हो ना पड़ी बेड़ियां
शक्ति की पीठ अब ज्यादती ना सहे
दम ना तोड़े कहीं भूख से बचपना
रोटियों के लिए फिर लड़ाई न हो।
इसलिए राह....

● वशिष्ठ अनूप

(अपने वरिष्ठ एवं आदरणीय साथी श्री ओमप्रकाश रावल की अन्तिम विदाई के समय जनांदोलनों के कार्यकर्ताओं द्वारा गाया गया गीत)

श्री ओमप्रकाश रावल

जन्म- 4 जनवरी, 1928। बड़नगर, जिला उज्जैन में।

शिक्षा- हाई स्कूल तक उज्जैन में। बाद में होल्कर व क्रिश्चियन महाविद्यालय, इन्दौर से एम. ए. तथा एल. एल. बी.। 1956 में इलाहाबाद से एम. एड.।

1972-73 में सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन लेन्गवेजेस (C.I.I.L.) मैसूर से कन्नड़ भाषा का अध्ययन।

1942 से आजादी आन्दोलन में सक्रिय हिस्सेदारी। मार्क्स, गाँधी का अध्ययन। जयप्रकाश, लोहिया से प्रभावित।

1949 से शासकीय स्कूलों में अध्यापन। 1952 में विद्यार्थियों का नेतृत्व करने पर स्थानांतरण। शासकीय कार्यवाही के विरोधस्वरूप विद्यार्थियों का विशाल जुलूस। 1957 में शासकीय सेवा से त्यागपत्र।

1957 से 1970 तक इन्दौर के परसरामपुरिया विद्यालय में प्राचार्य। इसी बीच सिविल नाफरमानी आंदोलन में जेलयात्रा।

'अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस' एक मई 1959 को कृष्णा वर्मा से विवाह।

1962 में प्रथम अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन का उज्जैन में आयोजन।

शिक्षकों की राजनीति में भागीदारी के मसले पर विद्यालय प्रबन्ध समिति से संघर्ष व त्यागपत्र।

समाजवादी पार्टी से जुड़कर राजनैतिक कार्य के दौरान 1975 में मीसा के तहत बन्दी। तीन महीने भूमिगत, सोलह महीने जेल में।

1977 में जनता शासन में शिक्षा राज्यमंत्री। साथियों के सहयोग के अभाव में शिक्षा व शिक्षकों की स्थिति में परिवर्तन न कर पा[illegible] त्यागपत्र।

1978-79 से ही दलीय राजनीति से अलग हटकर जन[illegible] (पी.यू.सी.एल., नर्मदा बचाओ आंदोलन, जन विकास आंदोलन, [illegible] मुक्ति मोर्चा, एकता परिषद आदि) और संघर्षों से जुड़े। मैदानी सं[illegible] भागीदारी के साथ ही जनजागृति के लिए लगातार लेखन। जनसंगठ[illegible] और समूहों के, खासकर युवा साथियों से, विशेष लगाव।

मृत्यु - 3 फरवरी 1994।

MOVEME